मंजरी

स्त्री के मन की

जुलाई, 2016

अंक–9

बचपन

को रंगने दो

दूध से हमने किया तैयार
हंसता-खेलता बिहार

सुधा
श्वेत समृद्धि

COMFED
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com, www.sudha.coop

सुधा
का नया UHT एलेकस्टर दूध पैक, बिना फ्रिजिंग
रहे अब 90 दिन तक, शुद्ध और ताजा

नजदीकी सुधा बूथ पर उपलब्ध

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि. www.sudha.coop

Sudha
An alliance
with healthy life

Bihar/Jharkhand's No.1 Dairy brand
Sudha
सेहत, स्वाद, अनगिनत खुशियाँ

COMFED BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LTD.
E-mail: comfed.patna@gmail.com, Website: www.sudha.coop

SHAHAD

ये दूध नही दम है,
पियो जितना कम है।

Sudha
सेहत,स्वाद,अनगिनत खुशियाँ

Best Brand Best Milk

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com www.sudha.coop

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.

उत्कृष्टता, आनंद और सफलता का उत्सव

हम आज जिस मुकाम पर हैं उसका सारा श्रेय हमारी कर्मठ श्रमशक्ति को जाता है। सतत विकास के माध्यम से उत्कृष्टता की खोज करने में नवाचार और प्रतिभा के क्षेत्र में हमारे समर्पित पेशेवर ही हमें दूसरों से आगे रहने में सक्षम बनाते हैं। आज पावरग्रिड के पास पारेषण क्षेत्र और ग्रिड प्रबंधन में सर्वश्रेष्ठ प्रतिभावान लोग कार्यरत हैं। हम गौरवशाली powergridians, ऊर्जा के पारेषण द्वारा लाखों लोगों के जीवन को सशक्त बनाते हैं। अतः, उत्कृष्टता और आनंद के साथ, वैश्विक स्तर पर पारेषण के क्षेत्र में अग्रणी बनने और अधिक से अधिक ऊर्जा के साथ भारत की सेवा करने हेतु हम, ***powergridians* सदैव प्रतिबद्ध हैं।**

पावरग्रिड नेटवर्क, संक्षेप में

- विद्युत पारेषण के माध्यम से राष्ट्र को जोड़ना
- भारत की प्रमुख विद्युतीय ऊर्जा पारेषण कंपनी
- वैश्विक स्तर पर पाँचवी सबसे तेज प्रगतिशील विद्युत कंपनी
- भारत के अंतर्राज्यीय और अंतर-क्षेत्रीय विद्युत पारेषण प्रणाली के 90% से अधिक का स्वामित्व और संचालन
- 1994 के बाद से प्रदर्शन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भारत सरकार द्वारा "उत्कृष्ट" रैंकिंग प्रदान की गई
- पावरग्रिड की पारेषण प्रणाली की उपलब्धता 99% से अधिक
- देश में उत्पन्न बिजली की 46% से अधिक का पारेषण पावरग्रिड के नेटवर्क द्वारा

पावरग्रिड

एक 'नवरत्न' कंपनी

एक राष्ट्र ग्रिड फ्रीक्वेंसी

पंजीकृत कार्यालय: बी-9, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016 फोन नं: 011-26560122, फैक्स: 011-26601081
कॉर्पोरेट कार्यालय: सौदामिनी, प्लॉट नं. 2, सेक्टर-29, गुड़गांव, हरियाणा-122 001 (भारत) फोन नं: 0124-2571700-719, फैक्स: 0124-2571762,
ई मेल आईडी: powergrid@powergrid.co.in, सीआईएन: L40101DL1989GOI038121, www.powergridindia.com

श्रद्धांजलि

महाश्वेता देवी (1926–2016)

भारतीय साहित्य की जीवंत किंवदंती महाश्वेता देवी ने 28 जुलाई को हमेशा के लिए हम सबसे विदा ले ली। 90 वर्ष की अवस्था में भी अति सक्रिय रहीं महाश्वेता न केवल साहित्य के लिए जीती रहीं बल्कि वे हर क्षण उन लोगों के लिए लड़ती भी रहीं जो वंचित थे, लाचार थे। उन्हें बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के लोधा और शाबार आदिवासियों के हक की आवाज उठाने के लिए भी उतना ही जाना जाता है जितना हजार चौरासी की मां, रुदाली और आरण्येर अधिकार जैसी कालजयी रचनाओं के लिए। उन्हें रेमन मैग्सेसे अवार्ड, साहित्य अकादमी अवार्ड, ज्ञानपीठ पुरस्कार, पद्मश्री और पद्म विभूषण जैसे प्रतिष्ठित सम्मानों से नवाजा जा चुका है।

सुप्रसिद्ध कवि मनीष घटक और लेखिका धारित्री देवी के घर ढाका में जन्मीं महाश्वेता की आरंभिक शिक्षा तो जन्मस्थान में ही हुई लेकिन विभाजन के बाद उनका परिवार पश्चिम बंगाल चला आया। उन्होंने गुरुवर रवींद्रनाथ टैगोर के शांति निकेतन में विश्वभारती विश्वविद्यालय से अपनी बी.ए. की पढ़ाई पूरी की तथा कोलकाता यूनिवर्सिटी से अंग्रेजी में एम.ए. पास किया। पढ़ाई के तुरंत बाद ही वे साहित्य लेखन में सक्रिय हो गईं और 1956 में पहली किताब झांसीर रानी प्रकाशित हुई जो बंगाली में थी। 1964 में महाश्वेता देवी ने बिजोयगढ़ कॉलेज में पढ़ाना शुरू किया जबकि इसी दौरान वे पत्रकार और लेखिका दोनों के तौर पर काम करती रहीं। उन्होंने लोधा और शाबार आदिवासियों के बारे में पढ़ा। उनके साथ होने वाले भेदभाव, छुआछूत और जमींदारों तथा अधिकारियों द्वारा उनके शोषण के बारे में पढ़कर वे इतनी द्रवित हुईं कि फिर उसके बाद आजीवन उनके लिए संघर्ष करती रहीं। इसी तरह जेल में आजीवन कारावास की सजा पाए कैदियों की जल्द रिहाई और बीस साल की सजा चौदह साल कराने के लिए भी वे सदा प्रयास करती रहीं। उनके उपन्यासों और कहानियों में हमेशा वे लोग मौजूद रहे जिनके लिए वे जीती रहीं। वर्ष 1947 में उनका विवाह प्रसिद्ध रंगकर्मी बिजॉन भट्टाचार्य से हुआ जो देश के 'पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन मूवमेंट' के स्थापकों में शामिल थे। उनसे तलाक के बाद 1962 में उन्होंने उपन्यासकार असित गुप्ता से विवाह किया।

डॉ. तृप्ति शाह (1962–2016)

महिलावादी और पर्यावरण संरक्षक तृप्ति शाह ने अपनी जिंदगी को पूरे संतोष के साथ जिया। मानवाधिकारों के लिए काम करने वाली, प्रकृति को बचाने की जिद पालने वाली और महिलाओं के लिए वडोदरा में 'सहियार' की स्थापना करने वाली तृप्ति ने 26 मई, 2016 को दुनिया छोड़ दी। महज 54 वर्ष की अवस्था में भले ही वे कैंसर से जंग हार गईं लेकिन जब तक जीवित रहीं पूर्ण आशा और उर्जा के साथ कई मोर्चों पर लड़ती रहीं। उनके अचानक चले जाने से कई सामाजिक आंदोलनों को गहरा झटका लगा है। लिंग अनुपात, महिलाओं पर हिंसा, असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं के अधिकार, कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न, किसानों तथा गरीबों के लिए जीविका, दलितों और आदिवासियों के अधिकार जैसे अनगिनत ऐसे काम थे जिसमें उन्होंने खुद को झोंक दिया था।

वडोदरा के एमएस यूनिवर्सिटी से वर्ष 2000 में उन्होंने अर्थशास्त्र में पीएच.डी की डिग्री ली जिसके तहत उन्होंने शहरी असंगठित क्षेत्र में महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर शोध किया था। भारत में महिला आंदोलनों, सामुदायिक हिंसा तथा यथावादियों का महिलाओं पर प्रभाव तथा वैश्वीकरण के प्रभावों पर किये गये उनके शोध कार्य उल्लेखनीय रहे हैं। वे जितना ही मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित रहीं उतना ही उन्हें गांधी के अहिंसावाद ने भी प्रेरित किया। जिस समय तृप्ति का जन्म हुआ उस समय उनकी मां सूर्यकान्ताबेन शाह वडोदरा के रिमांड होम में काम करती थीं। वे पहली महिला थीं जिन्होंने तीन महीने के मातृत्व अवकाश के लिए लड़ाई लड़ी और जो तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू तक जा पहुंचा।

1974 में केवल 14 वर्ष की आयु में तृप्ति ने ऐतिहासिक रेलवे हड़ताल के समर्थन में आहूत एकजुटता कार्यक्रमों में शिरकत की थी। नवनिर्माण विद्रोह के झंडे तले आंदोलन करते हुए तृप्ति भी हमेशा साथ रही। मूल्यवृद्धि और भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ते हुए जब भी दूसरे जेल जाते तो तृप्ति को रिमांड होम भेजा जाता क्योंकि वे अन्य आंदोलनकारियों की अपेक्षा काफी छोटी थीं। अपने लक्ष्य के प्रति वे कितनी समर्पित थीं इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता था कि रिमांड होम से रिहा होने के लिए अपनी मां के नाम का उन्होंने कभी इस्तेमाल नहीं किया। वे साफ कहतीं ''मैं अच्छे काम के लिए यहां आई हूं तो फिर किसी के प्रभाव का इस्तेमाल क्यों करूं? मेरे साथ भी वैसा ही व्यवहार होना चाहिए जैसा कि अन्य महिला आंदोलनकारियों के साथ हो रहा है।''

– प्रो. विभूति पटेल

(एसएनडीटी वीमेंस यूनिवर्सिटी, मुंबई में अर्थशास्त्र विभाग प्रमुख)

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवे. दनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संपादकीय

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र पटना विवि

प्रो. डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी. बिहार

कीर्ति
नेशनल कोऑर्डिनेटर, कैरीटास (CARITAS)

डा. शरद कुमारी
प्रोजेक्ट ऑफिसर, एक्शन एड

सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

''यदि हमें दुनिया को वास्तव में शांति का पाठ पढ़ाना है और यदि हम सचमुच ही युद्ध के विरुद्ध युद्ध लड़ना चाहते हैं तो हमें शुरुआत बच्चों से करनी होगी।''—महात्मा गांधी

बच्चे इस संसार के सबसे अनमोल रत्न और बेहतर भविष्य की उम्मीद हैं। ऐसे में इंसान की उन्नति और आबादी की गुणवत्ता को और निखारने के लिए बच्चों का जीवन, उनकी सुरक्षा और विकास सुनिश्चित करना पूर्व निर्धारित शर्तें हैं। ये किसी राष्ट्र के भविष्य और लक्ष्य को सीधे–सीधे प्रभावित करती हैं। यही वजह है कि दुनिया के समस्त देशों ने चाहे वे विकसित हों या विकास के रास्ते पर हों, बच्चों की सुरक्षा और उनका विकास करने का प्रण लिया है। यूनाइटेड नेशन कन्वेंशन ऑन दि राइट्स ऑफ दि चाइल्ड (सीआरसी, 1989) और मिलेनियम डेवलपमेंट गोल ने बच्चों का हित सुनिश्चित करने के लिए कई निर्देश और उपाय तय किये हैं। इसके साथ–साथ कई अंतरराष्ट्रीय संधियां भी की गई हैं जिनमें लगभग सभी देश भागीदार हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर की नीतियों और दिशा–निर्देशों से प्रभावित होकर अलग–अलग देशों ने स्थानीय स्तर पर भी ऐसी कई योजनाओं और कार्यक्रमों को अपनाया है जिनके द्वारा बच्चों के लिए अनुकूल माहौल तैयार किया जा सके। इसी का परिणाम है कि कई देशों ने बच्चों के कल्याण के रास्ते की बाधाओं को दूर कर मिसाल कायम की है। हालांकि इन प्रयासों के बीच तमाम प्रकार के भेदभाव और भिन्नताएं हॉलमार्क के रूप में कायम रहीं। इतनी कोशिशों के बाद जहां विकसित देश लक्ष्यों को पूरा करके बहुत आगे निकल गए वहीं विकासशील देश अभी भी अपने लक्ष्यों से बहुत दूर हैं। इसके पीछे कई प्रकार के कारण हैं जिनमें प्रशासकीय से लेकर कार्यस्तर और देश की मौजूदा स्थिति तक शामिल हैं।

दक्षिण एशिया की 40 फीसद आबादी 18 साल से कम उम्र की है जो कुल मिलाकर करीब आधा बिलियन तक होती हैं। प्रमाणों और दस्तावेजों से यह स्पष्ट है कि दक्षिण एशिया के देशों ने बच्चों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को पूरा करने में बहुत हद तक कामयाबी पाई है और मानव विकास में अपनी उपलब्धि को लेकर उन्हें गर्वित होना चाहिए। आज बच्चों की स्थिति एक दशक पहले की उनकी स्थिति से कहीं ज्यादा अच्छी है। ज्यादा से ज्यादा बच्चे स्वस्थ हैं और अपने पांचवे जन्मदिन को मना पा रहे हैं। शिक्षा तक उनकी पहुंच है और अपनी पिछली पीढ़ी की तुलना में भविष्य को लेकर वे अधिक आशावान हैं। जहां तक दक्षिण एशिया में बाल अधिकारों का मामला है तो वो एक ओर वैधानिक तथा नीतिपरक प्रतिबद्धताओं पर निर्भर है तो दूसरी ओर वैश्वीकरण की प्रक्रिया के नतीजों पर। बच्चों के कल्याण की दिशा में तमाम उपलब्धियों के बाद भी पूरी दुनिया और यह क्षेत्र भेदभाव, कानूनों के उल्लंघन तथा अभावों के बीच खड़ा है जिसे हजारों बच्चे आज भी झेल रहे हैं।

कुल मिलाकर जो आंकड़े हैं वे बच्चों से जुड़े मामलों और उनके उल्लंघन की ओर इशारा करते हैं। इस क्षेत्र के कई देशों ने शिशु एवं बाल मृत्यु दर को कम करने में अच्छी सफलता पाई है। फिर भी मिलेनियम डेवलपमेंट गोल अभी दूर है। पिछले तीन दशक में दक्षिण एशिया में पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर काफी कम हुई है, जो कि बाल कल्याण के लिए सबसे जरूरी है, फिर भी यह क्षेत्र बच्चों के संपूर्ण हित की गारंटी नहीं दे पाता है। आर्थिक क्षेत्र में उल्लेखनीय विस्तार के बाद भी यह क्षेत्र दुनिया में कुपोषित बच्चों की सबसे ज्यादा संख्या के लिए जाना जाता है। दुनिया के आधे से ज्यादा कुपाषित बच्चे इसी क्षेत्र से आते हैं। छोटे कद और कम वजन के बच्चे यहां आम हैं जिसके कई कारण हैं। इनमें गर्भावस्था में, प्रसव के दौरान तथा प्रसव के बाद जच्चा–बच्चा की देखभाल में होने वाली लापरवाही तक शामिल हैं। इसी तरह शिक्षा के मोर्चे पर भी इस क्षेत्र ने काफी प्रगति की है और ज्यादा से ज्यादा बच्चों का स्कूलों में नामांकन करवाया जा सका है, बावजूद इसके दक्षिण एशिया में दुनिया के 35 फीसद बच्चे स्कूल से बाहर हैं (यूनिसेफ 2007)। इस क्षेत्र के कुछ हिस्सों में

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

सहयोग

सुधा डेयरी
पावरग्रिड कार्पोरेशन
द ऑफसेटर, पटना
बंसल ट्यूटोरियल, पटना
सेज पब्लिकेशन
जीवक हार्ट हॉस्पीटल, पटना
केनरा बैंक
भूषण इंटरनेशनल, पटना
हॉस्पिटो इंडिया, पटना

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612-2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

© इक्विटी फाउंडेशन

स्कूलों में लैंगिक भेदभाव और ड्रॉप आउट अभी भी बहुत ज्यादा हैं। इसके अलावा यह क्षेत्र बच्चों के साथ होने वाले भेदभाव, शारीरिक तथा यौन उत्पीड़न के लिए कुख्यात है। कोई उम्र, लिंग और स्थान बच्चों के लिए सुरक्षित नहीं है। जन्म से लेकर किशोरावस्था तक चाहे वो स्कूल हो, घर, कोई संस्था या समाज हो, बच्चों के खिलाफ अपराध हर जगह मौजूद है। कई बार तथाकथित रक्षक ही भक्षक बन कर सामने आते हैं। यद्यपि कि बच्चों के खिलाफ होने वाले अपराध और उत्पीड़न के वास्तविक आंकड़े मौजूद नहीं हैं, फिर भी रिपोर्ट और अध्ययन ये बताते हैं कि आज भी हजारों बच्चे स्ट्रीट चिल्ड्रेन के नाम से जाने जाते हैं, हजारों बच्चों की तस्करी की जाती है, सैकड़ों बच्चों को यौन उत्पीड़न, युद्ध, बाल विवाह और बंधुआ मजदूरी का शिकार बनना पड़ता है। दक्षिण एशिया में 5 से 14 साल के करीब 43 मिलियन बच्चे मजदूरी करने को विवश हैं। सामाजिक योजनाओं के अभाव में हजारों बच्चों को अपने अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है। अपने क्षेत्रों से जबरन हटाए जाने तथा आर्थिक प्रवासन के कारण उन्हें गलियों में रहने को मजबूर कर दिया जाता है। देश की सीमा में और उससे बाहर न जाने कितने ही बच्चों का व्यापार किया जाता है जबकि पार्ट टाइम और फुल टाइम मजदूरी करने वाले बच्चों की संख्या भी दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। हमारा समाज अपनी भावी पीढ़ी के साथ हो रहे अत्याचारों के प्रति आंखें मूंदकर नहीं बैठा रह सकता है।

'मंजरी–स्त्री के मन की' का बच्चों पर आधारित यह अंक उनकी मौजूदा स्थिति को उजागर करने का एक प्रयास है जो मुख्य रूप से बच्चों के जीवन, विकास, सुरक्षा और अधिकारों से जुड़े पक्षों को सामने रखता है। इसमें सुझावों के जरिये कमियों के पुल को पाटने की भी कोशिश की गई है जो बच्चों के लिए नई दुनिया का निर्माण कर सकता है। वे बच्चे जो मासूमियत, आजादी, खुशी, आनंद और प्रेम का पर्याय हैं।

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

अतिथि संपादक

शिक्षा आजादी की चाबी

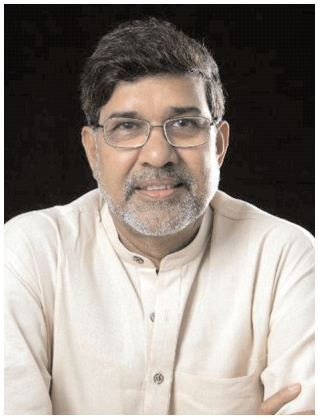

कैलाश सत्यार्थी

बाल मजदूरों की मुक्ति के लिए स्थापित बचपन बचाओ आंदोलन के संस्थापक तथा अपने कार्यों के लिए वर्ष 2015 में प्रतिष्ठित नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित। उन्हें यह सम्मान लड़कियों की शिक्षा के लिए आवाज बुलंद करने वालीं मलाला यूसुफजई के साथ साझा रूप से प्रदान किया गया था। 1980 में अपनी स्थापना के बाद से बचपन बचाओ आंदोलन 80 हजार से ज्यादा बच्चों को मजदूरी और शोषण से आजादी दिला चुका है।

आज पूरी दुनिया, अंतरराष्ट्रीय मीडिया और नेता, आतंकवाद की समस्या पर उलझे हैं। मैं अपने आप से पूछता हूं कि हथियारों–बमों के निर्माण और फूड पैकेटों पर तो हम कितना ही पैसा बहा रहे हैं लेकिन आतंकवाद के दंश से निबटने के लिए क्यों नहीं। अगर हमने अफगानिस्तान के लोगों में अर्थपूर्ण शिक्षा के प्रसार के लिए थोड़ी सी राशि खर्च की होती तो वहां तालिबान और आतंक के कैंप कभी सिर नहीं उठा पाते।

कुछ समय पहले का सच यह था कि आप तब तक शांति से नहीं सो सकते जब तक आपका पड़ोसी भूखा हो, लेकिन आज के समय की सच्चाई यह है कि आप तब तक शांति से काम नहीं कर सकते या जी नहीं सकते जब तक आपका पड़ोसी अशिक्षित है। हम ज्ञान पूंजीवाद के युग में जी रहे हैं। वैश्वीकरण ने दुनिया को कई पहलुओं से अवगत कराया है लेकिन साथ ही इसने ताकत की एक ऐसी तिकड़ी का भी निर्माण किया है जिसमें राज्य की शक्ति, बाजार और ज्ञान एक साथ बंधे हुए हैं। दुनिया के सबसे गरीब लोग जिस केवल एक हथियार का इस्तेमाल कर सकते हैं वह है ज्ञान की शक्ति, शिक्षा की शक्ति। शिक्षा को एक कार्यक्रम, प्रोजेक्ट, समाज कल्याण के उपाय, एक चैरिटी या फिर सदियों से चली आ रही एक जनसेवा कार्य के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन उन बच्चों के लिए जिनके साथ मैं रहता और काम करता हूं और जो गुलामी, वेश्यावृत्ति के शिकार हैं, जिन्हें जानवरों की तरह खरीदा और बेचा जाता है और जिनमें से कई गुलाम के तौर पर ही जन्म लेते हैं क्योंकि उनके माता–पिता बंधुआ होते हैं, शिक्षा आजादी की चाबी है। कई बार शिक्षा जिंदगी के समान है।

शिव शंकर के मामले में बहुत देर हो गई थी। वह नई दिल्ली में घरेलू नौकर के तौर पर काम करता था। बारह साल का शिव शंकर कभी स्कूल नहीं जा पाया था। वह बंधुआ था। उससे दिन–रात काम करवाया जाता था लेकिन काम के बदले कभी पगार नहीं दी जाती थी। उसे न केवल मारा–पीटा जाता था बल्कि यौन शोषण भी किया जाता था। एक दिन दोपहर को उसकी मां को बताया गया कि शिव शंकर बीमार है। लेकिन जब वह बेटे के मालिक के पास पहुंची तो वहां उसे सिर्फ बेटे की लाश ही मिली। स्थानीय पुलिस और मालिक ने शिव शंकर के पिता रामेश्वर से सादे कागज पर जबरन अंगूठे का निशान लगवा लिया। लाचार पिता ने बेटे की मौत की जांच की गुहार लगाई लेकिन सब बेकार। मेरे संगठन ने इस मामले को उठाया और मालिक को कानून के घेरे में लाने के लिए पुलिस थाने के सामने प्रदर्शन किया। जब हम शिव शंकर की लाश को अंतिम संस्कार के लिए लेकर गए तो मैनेजर ने बच्चे के पिता को एक फार्म भरने के लिए दिया और उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा। रामेश्वर ने फार्म पर अंगूठे का निशान लगाया और फफक पड़ा। उसने बताया कि जब उसके बेटे को काम पर रखा गया था तब मालिक ने उससे कई कागजों पर अंगूठे का निशान लिया था। उस समय भी जब लाश को मालिक के घर से उठाया गया था और तब भी जब उसे अस्पताल के मुर्दाघर से ले जाया गया था। इस मामले में हमने पाया कि बच्चे को नौकरी पर रखने वाले मालिक ने पुलिस की मदद से कई फर्जी एफिडेविट करवा रखे थे जो न्याय मिलने की संभावनाओं को समाप्त कर देते थे। रामेश्वर ने माना कि अगर उसके बच्चे को लिखना आता तो जिंदा रहते वह हमें अपने बारे में बता सकता था या अगर मैं ही पढ़ा–लिखा होता तो अपने बच्चे को मौत के मुंह में जाने से बचा सकता था। शिव शंकर के लिए देर जरूर हो गई लेकिन उसके छोटे भाई–बहनों के लिए नहीं, शिक्षा ही उन्हें उनके दुर्भाग्य से बचा सकती है।

एनी के लिए अभी भी बहुत देर नहीं हुई है। उसकी बड़ी बहन पैट्रिशिया को उसके मालिकों ने मनीला के एक रेड लाइट एरिया में बेच दिया था। किशोर वय की पैट्रिशिया को अपनी शाम ग्राहकों से साथ बितानी पड़ती है। पैट्रिशिया ने मुझे बताया कि मैं अपने सपने को पूरा करने के लिए पैसे जमा कर रही हूं। मैं चाहती हूं कि मेरी छोटी बहन स्कूल जाय न कि नाइट क्लबों में। शिव शंकर और एनी के भाई–बहनों के लिए शिक्षा आजादी और खुशी का सबब है। अगर मैं इसे लेकर कोई तत्परता नहीं जगा पाया तो मैं उन बच्चों के प्रति ईमानदार नहीं हो पाउंगा जिनके लिए मैं काम

अतिथि संपादक

करता हूं, और जो हर दिन–हर पल मर रहे हैं। मैं उनके सपनों और भावनाओं की मौत का गवाह रहा हूं।

करीब आधी सदी पहले यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमेन राइट्स में शिक्षा को मानव अधिकार के तौर पर स्वीकार किया गया था। कन्वेंशन ऑन द राइट्स ऑफ चाइल्ड पर सहमति जताने वाले 191 देशों ने भी इसे स्पष्ट रूप से बिना भेदभाव के मिलने वाला अधिकार माना था जबकि दाकार कार्ययोजना के तहत इसे एक बार फिर से पुष्ट किया गया था। लेकिन ग्लोबल कैंपेन फॉर एजुकेशन के तहत काम करने वाले मैं और मेरे साथी इसे एक बेहद गंभीर और जटिल समस्या के रूप में देखते हैं। जब हम अन्य मानव अधिकारों पर काम करते हैं तो हमारी रणनीति, मशीनरी और तरीका बहुत अलग होता है और इसलिए उन पर हम समझौता नहीं करते हैं। लेकिन जब बात शिक्षा के अधिकार की होती है तो संसाधनों और आधारभूत संरचनाओं से जुड़े अंतहीन बहाने हम ढूंढ लेते हैं, क्या ये एक मजाक नहीं है ? शिक्षा के अधिकार को भी समझौता रहित होना चाहिए। अगर हम शिक्षा को कल्याण के एक उपाय के रूप में देखते हैं तो गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा केवल उन लोगों तक सीमित हो जाएगी जो उसका भुगतान कर सकते हैं, गरीब बच्चों तक इसकी पहुंच सीमित हो जाएगी। इसके अलावा आर्थिक बाधाएं और राजनीतिक प्राथमिकताएं राज्य और केन्द्र दोनों स्तर पर बजट आवंटन को प्रभावित करती ही रहेंगी। साथ ही साथ अंतरराष्ट्रीय दानदाताओं की घटती संख्या और सामाजिक खर्चे को बाधित करतीं शर्तें प्रारंभिक शिक्षा में निवेश को हर प्रकार से रोकती हैं।

शिक्षा के अधिकार को भी समझौता रहित होना चाहिए। अगर हम शिक्षा को कल्याण के एक उपाय के रूप में देखते हैं तो गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा केवल उन लोगों तक सीमित हो जाएगी जो उसका भुगतान कर सकते हैं, गरीब बच्चों तक इसकी पहुंच सीमित हो जाएगी।

दुर्भाग्यवश हम अभी भी निःशुल्क और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को अधिकार के रूप में नहीं देखते हैं। शिक्षा को पूरी दुनिया में सम्मानजनक अधिकार के रूप में स्थापित करने के लिए कुछ शर्तों का होना बेहद जरूरी है :

1. आम लोगों का मजबूत रुझान। मेरे विचार से सबसे जरूरी चीज राजनीतिक इच्छाशक्ति जागृत कर उसे बनाए रखना है जिसके जरिये पारदर्शिता और जवाबदेही को सुनिश्चित किया जा सके। मीडिया, लोक सूचनाओं, स्थानीय निकायों, धार्मिक संस्थाओं, ट्रेड यूनियनों, शिक्षकों और एनजीओ का उत्साहजनक योगदान अत्यंत जरूरी है। ये जरूरी नहीं कि ऐसा केवल सरकार ही करे बल्कि शिक्षा के लिए समर्पित हर इंसान ये काम कर सकता है।

2. स्थानीय, जिला या फिर राष्ट्रीय, हर स्तर पर हिस्सेदारों की भागीदारी व्यापक, गंभीर, वास्तविक और स्थायी होनी चाहिए। कई देशों में सरकारें नागरिक समाजों को अपने आलोचक के रूप में पाती हैं तो कई देशों में ऐसे संगठन शिथिल और कमजोर हैं। संपूर्ण जानकारी, उत्तरदायित्व और लंबे समय के लिए समन्वय के साथ काम करने की ताकत के अभाव में उनसे ज्यादा कुछ की उम्मीद भी नहीं की जा सकती है।

3. राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संसाधनों का स्पष्ट आवंटन और उनकी समुचित निगरानी होनी चाहिए। अच्छी सोच, पहल और योजनाओं को एजुकेशन फॉर ऑल प्रोग्राम के जरिये सामने लाया जाना चाहिए। यदि उन्हें समय पर पोषित नहीं किया गया और उपयुक्त स्तर पर उनका इस्तेमाल नहीं किया गया तो वे अपना उत्साह और रुचि खो देंगे।

4. बाल श्रम को समाप्त करने के लिए वास्तविक प्रतिबद्धता और कार्यपद्धति को अपनाया जाना चाहिए। ग्लोबल मार्च आंदोलन के भागीदार होने के नाते हम मानते हैं कि निःशुल्क और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बाल श्रम को समाप्त करने की दिशा में सबसे प्रभावशाली उपाय हो सकती है। बच्चों के रूप में सबसे सस्ता और आसानी से मिलने वाला श्रम नियोक्ताओं के लोभ को बढ़ाता है तो वहीं गरीब और अशिक्षित माता–पिता आसानी से उनके झूठे प्रलोभन का शिकार हो जाते हैं। ऐसे में बाल श्रम को मिटाने के लिए एक स्पष्ट और समयबद्ध रणनीति बनाए जाने की जरूरत है।

5. एजुकेशन फॉर ऑल प्रोग्राम की समुचित निगरानी के लिए हर जिला, देश और राष्ट्र के स्तर पर जिम्मेदार तंत्र का निर्माण किया जाना चाहिए। ये तंत्र व्यापक भागीदारी, पारदर्शिता और दायित्व के साथ तैयार किये जाने चाहिए। परंतु इसे केवल बाहर से ही प्रभावी न होकर हर स्तर पर प्रभावी होते हुए अंतरराष्ट्रीय निगरानी संस्था से संबद्ध होना चाहिए।

6. आधारभूत शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रहे माता–पिताओं तथा अभिभावकों की शिकायतों को सुनने के लिए एक तंत्र का निर्माण किया जाना चाहिए। हमें इस बात को स्वीकार करने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिए कि हमारे देश में अभी भी ऐसी कई सामाजिक–सांस्कृतिक बाध्यताएं तथा लड़कियों एचआईवी पीड़ितों तथा अन्य वंचित समूहों के प्रति भेदभावपूर्ण मानसिकता विद्यमान है जो सभी बच्चों

देश में एक राष्ट्रीय शिक्षा आयोग भी गठित किया जाना चाहिए जिसके जरिये विभिन्न एजेंसियां सबके लिए शिक्षा जैसे कार्यक्रमों को लागू करवा सकें। यह आयोग अधिकृत हो तथा मौजूदा कानूनों, संवैधानिक प्रावधानों एवं अंतरराष्ट्रीय समझौतों को लागू करवाने में सक्षम हो।

अतिथि संपादक

को स्कूलों तक पहुंचने से रोकते हैं। यदि बच्चे और अभिभावक शिक्षा को मौलिक मानवाधिकार के रूप में देखना चाहते हैं तो इसकी जिम्मेदारी हमेशा गांव के शिक्षकों पर ही नहीं डाली जा सकती और न ही पुलिस तथा अदालत ही इसे पूरी तरह मुकाम पर पहुंचा सकते हैं बल्कि इसके लिए अन्य संस्थाओं को भी शक्तिशाली और संसाधनों से युक्त बनाना होगा।

7. विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के बीच ठोस, ढांचागत और लगातार समन्वय तथा संवाद बने रहना जरूरी है जो शिक्षा को प्रभावित करने वाले अलग–अलग सेक्टरों ;यथा, वित्त, श्रम, लिंग, समाज कल्याण आदिद्ध से संबद्ध हों। इसके अलावा नागरिक समाजों तथा संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों का भी लगातार सतर्क बने रहना आवश्यक है।

इन तमाम जरूरतों के बाद भी जो सबसे मौलिक सवाल है वो ये है कि योजनाओं के बन जाने के बाद क्या होगा ? आंतरिक और बाह्य कोष के गठन के बाद भी बिना निगरानी के क्या हो पाएगा ? यहां मैं कुछ मजबूत वैकल्पिक निगरानी तथा प्रवर्तन तंत्र के बारे में बताना चाहूंगा। इस मुद्दे को मानवाधिकार के कोण से समझने के लिए हमें उन मॉडलों तथा अनुभवों का अध्ययन करना होगा जो मानव अधिकारों की बहाली के लिए दक्षिण अफ्रीका और ब्राजील जैसे देशों ने अपनाया है। हमारे पास पहले से ही सशक्त राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग है जो अधिकारों को सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षों के माध्यम से लागू करवा सकते हैं। देश में इसके जैसा ही एक राष्ट्रीय शिक्षा आयोग भी गठित किया जाना चाहिए जिसके जरिये विभिन्न एजेंसियां सबके लिए शिक्षा जैसे कार्यक्रमों को लागू करवा सकें। यह आयोग अधिकृत हो तथा मौजूदा कानूनों, संवैधानिक प्रावधानों एवं अंतरराष्ट्रीय समझौतों को लागू करवाने में सक्षम हो। प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति द्वारा आदेशित यह आयोग चार मुख्य अंगों से युक्त हो, न्यायिक, मंत्रालयों व विभागों के प्रतिनिधियों, सिविल सोसाइटी तथा स्वतंत्र विशेषज्ञ। यह आयोग सबके लिए शिक्षा जैसे कार्यक्रमों को जीवित रखने में मुख्य भूमिका निभा सकता है।

चित्र : गवर्नेंसटुडे.को.इन

शिक्षा को अधिकार के रूप में परिणत करने के लिए किये जाने वाले कार्यों को कानूनी ढांचे में लाना उतना ही जरूरी है जितना कि इसे विकास का मुद्दा बनाना। इसके लिए जरूरी है कि ऐसे आयोगों का नेतृत्व सुप्रीम कोर्ट के किसी वर्तमान या पूर्व जज करें जिनका चयन राज्य अथवा देश का प्रमुख करे। मैं एक बार फिर कहना चाहूंगा कि इस तंत्र की सिफारिश करने के पीछे मेरा उद्देश्य आयोगों के कार्यों और उनके नतीजों को अधिक उत्साहजनक बनाना है। सबके लिए शिक्षा एक राष्ट्र आधारित कार्यक्रम है इसलिए उप–राष्ट्र तथा जिला स्तर पर इसके लिए हरसंभव प्रयास किया जाना बेहद जरूरी है। इसके लिए मैं शिक्षा पर एक जिलास्तरीय निगरानी कमेटी बनाने का प्रस्ताव रखूंगा। यह कमेटी भी जिला स्तर के विभिन्न विभागों के समन्वय पर आधारित होनी चाहिए जिसमें अभिभावकों, ग्रामीण नेतृत्व, नागरिक समाजों के प्रतिनिधि और शिक्षकों को स्थान दिया जाना चाहिए। इस कमेटी का नेतृत्व जिलाधिकारी को करना चाहिए और इसका मुख्य मकसद जमीनी स्तर पर सबके लिए शिक्षा कार्यक्रम की निगरानी होना चाहिए।

मुझे देश के आम लोगों, हिस्सेदारों, अधिकारियों और एनजीओ प्रतिनिधियों से व्यक्तिगत रूप से मिलने का मौका मिला था जब मेरे संगठन ने शिक्षा के लिए राष्ट्रव्यापी मार्च में शिरकत की थी। इस दौरान जो सबसे उत्साहजनक बात सामने आई वह थी गरीब लोगों के मन में शिक्षा पाने की प्यास अगर वो वाकई निःशुल्क और उपयोगी हो। इस मुद्दे से संबद्ध ज्यादातर लोग और संगठन अक्सर शिक्षा की गुणवत्ता और लोगों के प्रदर्शन की शिकायत करते हैं लेकिन यह पता लगाना बेहद मुश्किल है कि क्या वे वाकई समस्या के समाधान के लिए संघर्षरत होते हैं? ज्यादातर लोग न तो बजट के बारे में जानते हैं और न ही उन्हें उपलब्ध संसाधनों का कोई ज्ञान होता है। उन्हें अपने जिले में प्रारंभिक शिक्षा पर होने वाले खर्च तक के बारे में पता नहीं होता है। इसका यह मतलब नहीं है कि उन्हें समस्या में कोई रुचि नहीं है बल्कि उनके पास उचित मंच मौजूद नहीं होता। वे समस्या से अवगत होते हैं लेकिन उन्हें यह पता नहीं होता कि इसे किस मंच पर उठाया जाना चाहिए। इस स्थिति में जिला निगरानी कमेटी सही भूमिका निभा सकती है जो सबके लिए शिक्षा कार्यक्रम के लक्ष्यों को याद रखने के साथ–साथ आय के श्रोतों और खर्चों, दोनों पर निगरानी रख सकती है। मैं इस बात पर भी जोर देना चाहूंगा कि इसमें बहुत ज्यादा राशि भी व्यय नहीं होगी। कमेटी को नियमित अंतराल पर बैठकों का आयोजन कर इसकी समीक्षा रिपोर्ट राष्ट्रीय शिक्षा आयोग को भेजनी चाहिए।

आम जनता के सहयोग के बिना हम प्रभावशाली राजनीतिक इच्छाशक्ति भी नहीं पा सकते। यह जरूरी नहीं कि केवल राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या सरकार का कोई उच्च पदाधिकारी ही सबके लिए

अतिथि संपादक

शिक्षा कार्यक्रम को साकार रूप प्रदान कर सकता है बल्कि यह कोई साधारण सा अशिक्षित व्यक्ति भी हो सकता है जो लोगों में लिखने–पढ़ने के लिए जागरूकता पैदा कर दे। ये शब्द मेरे नहीं हैं बल्कि उस कालू की भावनाएं हैं जो उसने अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के सामने व्यक्त की थी। क्लिंटन का परिचय देने की जरूरत नहीं है लेकिन कालू भारत के एक गांव का 14 साल का बच्चा था जो मीलों दूर एक बुनाई कारखाने में बंधुआ मजदूरी करने को विवश था। उसे अपने मां–बाप से मिलने की इजाजत नहीं थी और उसके लिए दिन–रात एक समान थे। मां की याद आने पर उसे जानवरों की तरह पीटा जाता था। कालू को मेरे संगठन ने मुक्त कराया था और उसका दाखिला गांव के एक स्कूल में कराया था। तीक्ष्ण बुद्धि का कालू कक्षा में प्रथम आया और उसे पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन से मिलने का मौका मिला जब वे भारत दौरे पर थे। कालू ने श्री क्लिंटन से कहा कि वे उसके जैसे बच्चों की आजादी और शिक्षा के लिए और काम करें। श्री क्लिंटन ने अपनी असमर्थता जताते हुए कालू को बताया कि कुछ महीनों बाद वे राष्ट्रपति नहीं रहेंगे। इस पर कालू ने अनायास ही कह दिया था ''सर, शिक्षा प्रदान करने के लिए अमेरिका का राष्ट्रपति होना जरूरी नहीं है। कोई भी व्यक्ति किसी भी क्षमता के साथ काम कर सकता है।'' कालू के ये शब्द चुनौती हैं उन सभी के लिए जो बहाने तलाशते रहते हैं। शिक्षा में समझौता नहीं हो सकता और यह उस हर व्यक्ति का अधिकार है जिसने इस धरती पर जन्म लिया है।

कैलाश सत्यार्थी

यह आलेख पेरिस में वर्ष 2001 में हुए 'हाई लेवल ग्रुप ऑन एजुकेशन फॉर ऑल' समिट में श्री सत्यार्थी के संबोधन का अंश है।

अनुक्रमणिका

श्रद्धांजलि

संकल्पना

हमारी बात

– संपादकीय

अतिथि संपादक

– शिक्षा आजादी की चाबी

कैलाश सत्यार्थी

परिभाषा

– क्या है मेरी पहचान

क्विक फैक्ट्स

पेरेंटल प्रेशर

– ख्वाहिशों का भार ढोते बच्चे

शोमा ए. चटर्जी

बेगुनाह

– सलाखों में कैद बचपन

रुचिका निगम

चाइल्ड बजटिंग

– बड़े बजट में छोटे गुम

बाल उत्पीड़न

–मासूमियत को लगी नजर

–पोक्सो की छतरी मिली मगर सुरक्षा नहीं

दत्तक

– तारे जमीं पर

दीपिका झा

गुरुकुल

– स्कूलों की जवाबदेही बढ़ी, भरोसा घटा

पूजा अवस्थी

विशेषज्ञ

–अपनी जिम्मेदारी से न भागें मां–बाप

बाल तस्करी

– बाजार में बिकता बचपन

बाल विवाह

– उम्र छोटी, बोझ बड़ा

बिहार का हाल

–बचपन को बचा रहा आईसीडीएस
–शिक्षा में पीछे, बाल श्रम में आगे बिहार

बाल श्रम

–मजदूर है हर 11वां बच्चा

बदलाव के सारथी

श्रोत

http://www.childlineindia.org.in
http://www.thehindu.com
Ministry of statistics and Programme Implementation
Government of India
http://www.friendsofsbt.org
http://haqcrc.org
https://ourkidscenter.com
http://timesofindia.indiatimes.com
http://infochangeindia.org
Study on Child Abuse: India 2007
http://www.safeshores.org
http://indianexpress.com

परिभाषा

क्या है मेरी पहचान

''यदि हम स्थायी शांति स्थापित करना चाहते हैं तो हमें बच्चों से शुरुआत करनी होगी।'' संपूर्णता में देश की रचना का स्वप्न देखने वाले बापू इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि जब तक देश का बच्चा–बच्चा स्वतंत्र नहीं होगा तब तक आजादी अधूरी रहेगी। उन्होंने हर उम्र, लिंग और वर्ग के लिए आजादी का सपना देखा था। वैसे भी जिस देश की आबादी का एक–तिहाई हिस्सा अपनी बाल्यावस्था (0–14 साल) में हो वहां की हर नीति और कानून का लक्ष्य इस बड़ी आबादी का संरक्षण और संवर्द्धन होना चाहिए।

एक बच्चे का जीवन चक्र उसकी उत्तरजीविता, विकास और सुरक्षा के जरिये पूरा होता है। उत्तरजीविता का अर्थ बच्चों को सुरक्षित जन्म लेने और सम्मान के साथ स्वस्थ जीवन जीने का अधिकार प्राप्त होना है। दुर्भाग्यवश असमान लिंग अनुपात, उच्च शिशु मृत्युदर और लैंगिक भेदभाव जैसे कारक सभी बच्चों के जीने के अधिकार को बाधित करते हैं। इसी तरह भोजन की कमी और कुपोषण उन्हें बेहतर स्वास्थ्य के अधिकार से दूर करते हैं तो हिंसा, शोषण और दुर्व्यवहार बच्चों के सम्मान पर कुठाराघात करते हैं।

यूं तो स्वतंत्रता के बाद से ही हमारे देश के कानून निर्माताओं ने बच्चों के अधिकारों को लेकर सजगता दिखाई है। संविधान ने भी उनके हितों को सर्वोपरि रखते हुए दिशा–निर्देश जारी किये हैं। बालकों के जन्म से लेकर उनके किशोरावस्था तक पहुंचने और फिर वयस्क होने तक हर स्तर पर उनकी दैहिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए नीतियों और कानूनों का निर्माण किया गया है। किंतु कुछ असावधानियों और लचीलेपन के कारण कानून भंग करने वालों के लिए उनका उल्लंघन करना आसान हो गया है। इसमें सबसे बड़ी बाधा है बच्चों से जुड़े कानूनों में उनकी परिभाषा का समान न होना। बच्चों की उम्र तय करते समय हर कानून में अलग–अलग बात

चित्र : एक्सपर्टबेकॉन.कॉम

परिभाषा

बाल अधिकारों को लेकर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन

बच्चों की परिभाषा को लेकर दिये गये सामान्य दिशा–निर्देश, अनुच्छेद 1 – कन्वेंशन 18 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को बालक की श्रेणी में रखता है जब तक कि किसी देश की सरकार अपनी ओर से वयस्कता की उम्र निर्धारित नहीं करती है। कन्वेंशन की निगरानी ईकाई तथा बाल अधिकारों पर गठित समिति ने राज्यों को प्रोत्साहित किया है कि वे बालकों की उम्र सीमा को बढ़ाकर 18 वर्ष तक करें और इससे कम आयु के हर बच्चे की सुरक्षा सुनिश्चित करे।

भेदभाव की समाप्ति, अनुच्छेद 2 – कन्वेंशन हर बच्चे पर समान रूप से लागू होता है चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या क्षमता वाला हो, चाहे जो कुछ भी वे सोचते या बोलते हैं तथा चाहे किसी भी प्रकार के परिवार से वे आते हैं। इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता है कि बच्चे कहां रहते हैं, कौन सी भाषा बोलते हैं, उनके माता–पिता क्या करते हैं तथा वे लड़की हैं या लड़का, उनकी संस्कृति क्या है, वे स्वस्थ हैं या दिव्यांग तथा वे अमीर हैं या गरीब। किसी भी बच्चे के साथ किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं की जा सकती है।

बच्चे का हित सर्वोपरि, अनुच्छेद 3 – किसी भी निर्णय को लेते समय बच्चे के हित को सबसे उपर रखा जाना चाहिए। जब वयस्क निर्णय लेते हैं तो उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि इसका बच्चों पर कितना असर होगा।

जीने, जीवित रहने और विकसित होने का अधिकार, अनुच्छेद 6 – बच्चों को जीने का अधिकार है। सरकारों को यह सुननिश्चित करना होगा कि बच्चों को आगे बढ़ने का स्वस्थ माहौल मिले।

बच्चों के दृष्टिकोण को मिले सम्मान, अनुच्छेद 12 – चूंकि बच्चों को प्रभावित करने वाले फैसले वयस्क लेते हैं इसलिए बच्चों को भी यह अधिकार होना चाहिए कि वे अपने विचार सामने रख सकें। इसका अर्थ यह नहीं है कि बच्चे बड़ों को बताएं कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं, बल्कि कन्वेंशन कहता है कि वयस्कों को फैसले लेते समय बच्चों की राय भी जरूर सुननी चाहिए और उनका सम्मान कना चाहिए। अनुच्छेद 12 वयस्कों के उस अधिकार में भी दखल नहीं देता है जो उन्हें बच्चों से जुड़े फैसले लेने की आजादी देता है। बल्कि यह कहता है कि निर्णय लेने में बच्चों की भागीदारी उनकी परिपक्वता के हिसाब से होनी चाहिए।

कही गई है और इसका बेजा इस्तेमाल करने में लोग कामयाब हो जाते हैं। ज्यादातर कानूनों में 14 वर्ष तक के व्यक्ति को बालक की श्रेणी में रखा गया है तो कई अधिनियम इसे 18 वर्ष तक के लिए मान्य समझते हैं। कानूनों की इस अनियमितता का फायदा अक्सर असामाजिक तत्वों को मिल जाता है।

1989 के संयुक्त राष्ट्र के कन्वेंशन के मुताबिक, 18 साल से कम उम्र का व्यक्ति बालक कहा जाएगा। बच्चों के अधिकारों को लेकर बने उक्त कन्वेंशन पर 1992 में हस्ताक्षर करने वाले देशों में भारत भी था। मगर दुर्भाग्यवश देश में अलग–अलग कानून 'बालक' शब्द की व्याख्या अलग–अलग ढंग से करते हैं।

- भारतीय जनगणना हर उस व्यक्ति को बच्चे की श्रेणी में रखता है जिसकी उम्र 14 साल से कम हो।
- बच्चों के लिए बनी राष्ट्रीय नीति कहती है कि 18 साल से कम उम्र के बच्चे को बालक माना जाय और उसकी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए दीर्घकालीन नीति का निर्माण किया जाय।
- प्लांटेशन लेबर एक्ट, 1951 बालक, किशोर और वयस्क की आयु के लिए अलग प्रकार का नजरिया अपनाता है। इसमें कहा गया है कि बच्चे का मतलब उस व्यक्ति से है जिसने 14 साल की आयु पूरी नहीं की हो। 14 साल पूरा कर चुके व्यक्ति को किशोर तथा 18 वर्ष पूरा कर चुके व्यक्ति को वयस्क की श्रेणी में रखा गया है।
- बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 में कहा गया है कि 21 वर्ष से कम आयु के पुरुष और 18 वर्ष से कम उम्र की स्त्री को विवाह की अनुमति नहीं दी जाती है। यह 'बालक' की आयु को लेकर उलझन को और बढ़ाता है। हालांकि हाल ही में दिल्ली हाई कोर्ट ने कहा है कि मुस्लिम लड़की का विवाह उसकी माता–पिता की सहमति से यौवनावस्था प्राप्त कर लेने के बाद की जा सकती है।
- बाल श्रम निषेध अधिनियम, 1986 14 साल से कम उम्र के बच्चों को जोखिम भरे और खतरनाक कामों में संलग्न करने से रोकता है।

भारतीय दंड संहिता 1860 कहती है कि 7 साल से कम उम्र के बच्चे को आपराधिक कृत्यों के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के मामले में उम्र सीमा को बढ़ाकर 12 साल तक किया जा सकता है।

- यौन संबंधों की सहमति देने के लिए लड़की की उम्र 16 वर्ष निर्धारित की गई है जबकि अपहरण और बंधक बनाए जाने के मामले में सुरक्षा की दृष्टि से 16 वर्ष तक के लड़कों और 18 वर्ष तक की लड़कियों को 'बालकों' की श्रेणी में रखा गया है।

देश के कानूनों में बच्चों की उम्र निर्धारण को लेकर बरती गई असावधानी का फायदा उन लोगों को मिलता है जो बाल श्रम के जरिये अपनी जेब भरते हैं। ऐसे कई माफिया गिरोह हैं जो बिना किसी डर के छोटे बच्चों को खतरनाक और जोखिम भरे कामों में भर्ती करते हैं। उन्हें पता है कि पकड़े जाने पर बच निकलने के रास्ता भी इन्हीं कानूनों के जरिये उन्हें मिल जाएगा। स्वयंसेवी संस्था चाइल्ड राइट्स एंड यू यानी 'क्राई' ने नेशनल सैंपल सर्वे 2009–10 के आंकड़ों के आधार पर किये अध्ययन व विश्लेषण में पाया कि 13 राज्यों में 15 से 18 वर्ष के 25 फीसद बच्चे किसी न किसी रूप में कमाई के काम में लगे हुए हैं। सबसे बुरी हालत अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के बच्चों की है जिनमें क्रमशः 36.1 फीसद, 29.2 फीसद और 26.1 फीसद बच्चे किसी न किसी काम या मजदूरी में लगे हुए हैं। गुजरात, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश उन राज्यों में शामिल हैं जहां सबसे ज्यादा बाल श्रमिक मौजूद हैं।

क्विक फैक्ट्स

◆ भारत में 440 मिलियन बच्चे हैं। यह संख्या उत्तरी अमेरिका–अमेरिका, मेक्सिको और कनाडा– की कुल जनसंख्या से भी अधिक है। दुनिया में हर पांचवां बच्चा भारतीय है।

◆ भारत में हर साल 27 मिलियन बच्चे पैदा होते हैं। उनमें से करीब 2 मिलियन बच्चे 5 वर्ष तक का होने से पहले मौत के मुंह में समा जाते हैं।

◆ देश में 200 मिलियन लोग भुखमरी के शिकार हैं जिनमें से 40 फीसद वैसे बच्चे हैं जो 5 वर्ष तक जीते तो हैं लेकिन कुपोषित हैं।

◆ देश में टीकाकरण विश्व मानक के हिसाब से पिछड़ा है। 3 वर्ष से कम उम्र के 79 फीसद बच्चे एनीमिया के शिकार हैं।

◆ आयोडिन की कमी के कारण देश में आधे से ज्यादा बच्चों की पढ़ाई करने की क्षमता घट जाती है।

◆ देश में ज्यादातर बच्चों का स्कूल में नामांकन कराया जा चुका है लेकिन मुश्किल से आधे बच्चे ही रोज स्कूल जा पाते हैं। बहुतायत बच्चों को काम करने और परिवार के लिए कमाई करने को बाध्य किया जाता है।

◆ स्कूल जाने के पांच साल बाद भी 60 फीसद से भी कम बच्चे ही कहानी पढ़ पाते हैं या गणित के सामान्य सवालों को हल कर पाते हैं।

◆ सरकारी आंकड़ों के मुताबिक देश में बाल श्रमिकों की संख्या 12 मिलियन है जबकि एनजीओ के आंकड़े बताते हैं कि इनकी संख्या 60 मिलियन से भी ज्यादा है। इनमें लड़कियों की संख्या भी उतनी ही है जितनी कि लड़कों की।

◆ सबसे ज्यादा बाल श्रमिक कपड़ा कारखानों, ढाबों और होटलों में देखे जाते हैं जबकि घरेलू नौकरों के तौर पर भी बच्चों को बड़ी संख्या में भर्ती किया जाता है।

◆ इतना ही नहीं जोखिम भरे और खतरनाक कामों में भी बच्चे लगाये जाते हैं जिनमें पटाखा और माचिस बनाने के कारखाने शामिल हैं। ये कारखाने बच्चों को बुरी स्थिति में काम करने के लिए बाध्य करते हैं जहां उनका बचपन खो जाता है।

◆ देश के दो–तिहाई बच्चे शारीरिक प्रताड़ना के शिकार हैं।

◆ 2007 की एक रिपोर्ट के मुताबिक, ज्यादातर बच्चों को स्कूल में पीटा जाता है जबकि करीब आधे बच्चे सप्ताह में सातों दिन मजदूरी करने के लिए बाध्य हैं।

◆ 12,000 बच्चों पर किये गये अध्ययन में पाया गया कि 50 फीसद ने यौन प्रताड़ना झेली है जबकि 20 फीसद को गंभीर प्रताड़ना से गुजरना पड़ा है।

◆ करीब आधे बच्चों को मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया है। इन प्रताड़नाओं से तंग आकर ही बच्चे बहुधा घर छोड़ देते हैं और भटक कर दलालों और गिरोहों के चंगुल में फंस जाते हैं।

◆ 2001 से 2011 के बीच देश की आबादी में 181 मिलियन की वृद्धि हुई। इस दौरान 0–6 साल तक के बच्चों की संख्या में 5.05 मिलियन की कमी दर्ज की गई।

◆ बालकों की संख्या में 2.06 मिलियन जबकि बालिकाओं की संख्या में 2.99 मिलियन की कमी देखी गई।

◆ देश में सबसे ज्यादा 29 फीसद बच्चे 0–5 वर्ष तक के हैं।

◆ उत्तर प्रदेश में बच्चों की संख्या सबसे ज्यादा 19.27 फीसद है जबकि बिहार 10.55 फीसद के बाद दूसरे नंबर पर है। इसके बाद महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश का स्थान आता है।

◆ हरियाणा, पंजाब, जम्मू–कश्मीर, दिल्ली, चंडीगढ़, राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तराखंड, गुजरात और उत्तर प्रदेश में बालकों के अनुपात में बालिकाओं की संख्या खतरनाक स्तर पर कम है।

चित्र : ऑटिज्मडेलीन्यूजकास्ट.कॉम, शटरस्टॉक.कॉम, पिनटेरेस्ट.कॉम, इनकलर्स.क्लब

पेरेंटल प्रेशर

ख्वाहिशों का भार ढोते बच्चे

8 जनवरी, 2007 को कोलकाता के उपनगर में 14 साल का विश्वदीप भट्टाचार्जी अपने पिता के साथ छत पर टेबल टेनिस खेलने के दौरान बेहोश होकर गिर पड़ा और बाद में उसकी मौत हो गई। एक सप्ताह बाद ही बेंगलुरू में 20 साल की सम्पाली मिद्या ने टुमकुर स्टेशन पर चलती ट्रेन से कूदकर अपनी जान दे दी। पश्चिम बंगाल के हावड़ा में रोज बड स्कूल में सातवीं कक्षा में पढ़ने वाला 13 साल का देवव्रत राय पढ़ाई के लिए पिता की डांट से परेशान होकर घर छोड़कर चला गया। वह क्रिकेट में ज्यादा ध्यान लगाता था।

शोमा ए. चटर्जी

(स्वतंत्र पत्रकार एवं लेखिका)

उपरोक्त तीन मामले तो केवल उदाहरण हैं क्योंकि बच्चों की उत्पीड़न और मौत के ज्यादातर मामले मीडिया में आ ही नहीं पाते। इसके अलावा ये घटनाएं केवल पश्चिम बंगाल की हैं जबकि पूरे देश का यही हाल है। भारत में परिवार नाम की इकाई एकजुटता के आधार पर चलती है चाहे इसके लिए बच्चों की कीमत ही क्यों न चुकानी पड़े। इसलिए अगर घर में पिता बच्चों को प्रताड़ित करते हैं तो कोई भी मां इसकी थाने में रिपोर्ट दर्ज नहीं कराएगी और न ही वो अपने परिवार की काउंसिलिंग के लिए किसी के पास जाएगी चाहे परिवार का कोई सदस्य उत्पीड़न का शिकार ही क्यों न हो रहा हो। हमारे देश की विधि व्यवस्था भी बच्चों को उनके मां–बाप की प्रताड़ना, क्रूरता या दवाब से बचाने के लिए कोई उपाय नहीं बताती है। यह अफसोसनाक है क्योंकि अमेरिका जैसे पश्चिमी देशों में अगर मां–बाप बच्चे को प्रताड़ित करते हैं तो बच्चे को उनसे छीन लेने जैसा सख्त कानून मौजूद है।

भारत में परिवार नाम की इकाई एकजुटता के आधार पर चलती है चाहे इसके लिए बच्चों की कीमत ही क्यों न चुकानी पड़े। इसलिए अगर घर में पिता बच्चों को प्रताड़ित करते हैं तो कोई भी मां इसकी रिपोर्ट थाने में दर्ज नहीं कराएगी और न ही वो अपने परिवार की काउंसिलिंग के लिए किसी के पास जाएगी चाहे परिवार का कोई सदस्य उत्पीड़न का शिकार ही क्यों न हो रहा हो। हमारे देश की विधि व्यवस्था भी बच्चों को उनके मां–बाप की प्रताड़ना, क्रूरता या दवाब से बचाने के लिए कोई उपाय नहीं बताती है।

विश्वदीप पांच साल की उम्र से टेबल टेनिस खेलता आ रहा था और उसने कई बार राज्य का प्रतिनिधित्व भी किया था लेकिन वह अपने पिता को संतुष्ट नहीं कर पाता था। जिस दिन उसकी मौत हुई, वह 6 बजे सुबह ही प्रैक्टिस करके लौटा था। नाश्ता करने के तुरंत बाद पिता ने उसे अपनी बहन नेहा के साथ खेलने के लिए भेज दिया और उसके साथ साढ़े दस बजे तक खेलने के फौरन बाद पिता ने उसे अपने साथ टेबल टेनिस खेलने का दवाब डाला। पिता के साथ खेलने के दौरान जब एक बार विश्वदीप रिटर्न सर्विस नहीं दे सका तो पिता ने उस पर प्लास्टिक की किसी चीज से वार किया। चोट लगने के बाद भी विश्वदीप खेलता रहा। इसी दौरान साढ़े बारह बजे प्रैक्टिस करते–करते वह बेहोश होकर गिर गया। उसे फौरन बांगुर अस्पताल ले जाया गया जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया। विश्वद. ीप के कोच तपन चंद्रा ने उसकी मौत की पूरी जिम्मेदारी पिता दीपक पर डालते हुए कहा कि वे मेरे दोस्त भी हैं और मैंने उन्हें कई बार समझाया था कि अपने गुस्से पर काबू रखें। दीपक अक्सर विश्वदीप को बुरी तरह मारते थे जिसके कारण उसकी मौत हो गई। एक बार तो उसने विश्वद. ीप की चेन से पिटाई कर दी थी जिसके बाद मुझे उसे अस्पताल लेकर जाना पड़ा था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मौत की वजह खून का जमना बताया गया जो किसी चीज से चोट लगने के कारण हो सकता है। विश्वदीप की मां ने अपने पति के खिलाफ एफआईआर दर्ज करवायी जिसके बाद उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

बर्दवान के कुरमुल के एक स्कूल में साइंस टीचर की बेटी सम्पाली बेंगलुरू के अल्फा इंजीनियरिंग कॉलेज में कम्प्यूटर साइंस की छात्रा थी। वह परीक्षा में अच्छा नहीं कर पा रही थी और उसे लगता था कि वह अपने पिता की उम्मीदों पर खरा नहीं उतर पा रही है। इसलिए उसने जान दे दी। उसके पिता चाहते थे कि वह इंजीनियरिंग की पढ़ाई करे जबकि वह खुद ऐसा नहीं चाहती थी। उसकी शिक्षिका पूर्णिमा ने बताया था कि वह पढ़ाई में अच्छी नहीं थी और हमें

पेरेंटल प्रेशर

लगता था कि वह गलत लाइन पर चल रही है। सम्पाली ने मरने से पहले अपने पिता के नाम चिट्ठी में सारी बातें लिखी थीं। देवव्रत के पिता रामबहादुर कोलकाता के निकट बेलूर में खटाल चलाते हैं और अपने बेटे को उंचाई पर देखना चाहते हैं। उन्होंने उसका दाखिला शहर के इंग्लिश मीडियम स्कूल में करवाया था। बैली पुलिस स्टेशन के इंस्पेक्टर असित सेन ने बताया कि देवव्रत एक बार पहले भी घर से भाग चुका था जब वह पांचवी में पढ़ता था। उनके मुताबिक वह अपने पिता के दवाब से घबड़ा कर घर से भाग गया है।

दवाब कई और तरह के भी होते हैं। 19 नवम्बर, 2006 को खंडवा के भीखनगांव की छह साल की सानिया ने लगातार 64 घंटे गाकर लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड में अपना नाम दर्ज करवाया था। उसने इंदौर की आकांक्षा का 61 घंटे तक लगातार गाना गाने का रिकार्ड तोड़ा था। उसने 745 गाने गाए जिनमें फिल्मी और भक्ति गीत शामिल थे। जब सानिया से पूछा गया कि उसने ऐसा क्यों किया तो उसने कहा कि उसे कुछ अलग करने की बड़ी तमन्ना थी। क्या एक छह साल की बच्ची ऐसा सोच सकती है? इंदौर के दीपक गुप्ता ने 101 घंटे तक लगातार गाना गाकर सानिया का रिकॉर्ड अगले दिन ही तोड़ दिया। आखिर मां–बाप कुछ समय की लोकप्रियता के लिए क्यों अपने बच्चों को इस प्रकार की दौड़ में झोंक देते हैं। इसके पीछे उनकी टीवी चैनलों पर दिखाई देने की महत्वाकांक्षा हो सकती है। इसी तरह एक बच्ची घंटों तक चपाती बनाने की प्रतियोगिता में बेहोश हो गई। उस बच्ची को अस्पताल में भर्ती कराने की नौबत आ गई। आखिर ये किस तरह का अभिभावकत्व है जो बच्चों को इतने दवाब में काम करने के लिए विवश कर देता है? ऐसे रिकॉर्ड बनाने की जरूरत ही क्या है जो एक हफ्ते के बाद ही किसी और बच्चे के द्वारा तोड़ दिया जाय?

इस मामले में अमेरिका और ब्रिटेन भी कुछ कम नहीं हैं। 'मैडनेस ऑफ मॉडर्न फैमिलीज' में लेखक द्वय मेग सैंडर्स और एनी एशवर्थ लिखते हैं कि कैसे पढ़े–लिखे और समझदार माता–पिता भी दूसरे परिवारों से आगे निकलने की होड़ में अपने बच्चों के साथ अजीबोगरीब तरीके अपनाते हैं। अपने घर में छोटे बच्चों को एग–स्पून दौड़ के लिए चुपचाप तैयार करने से लेकर स्कूल ट्रिप पर फ्रांस गए बच्चों की बस का पीछा करने तक में मां–बाप सनक की हद तक लगे रहते हैं। इस किताब में उन मां–बाप के बारे में बताया गया है जो बच्चों के सोने के कमरे में विदेशी भाषा के रेडियो स्टेशन लगाते हैं ताकि बच्चा सोते समय उस भाषा को सीख सके। अमेरिका में मध्यवर्गीय माता–पिता बहुत शुरू से ही इस प्रयास में लग जाते हैं कि उनके बच्चों को अच्छे नंबर मिल सके और उनका दाखिला अच्छे कॉलेज में हो सके। सैंडर्स और एनी ने किताब में दबाव देने वाले अभिभावकों को श्रेणीबद्ध कर इसे हल्का बनाए रखने की को. शिश की है। एक ऐसी हेलीकॉप्टर मां है जो बच्चे को हमेशा अपनी आंखों के सामने रखने के लिए उसके चारों ओर घूमती रहती है। एक ऐसे टचलाइन पिता हैं जो अपने बेटे को फुटबॉल खेलने के लिए हमेशा उकसाते रहते हैं जिसे फुटबॉल खेलना पसंद नहीं है। ऐसे ही एक और टचलाइन मां है जो स्वीमिंग पूल के किनारे अपने मोबाइल पर स्टॉपवाच लगाकर बेटे की निगरानी करती है। इको मम्मी हमेशा इस बात को लेकर चिंतित रहती है कि उनके बेटे के खाने की प्लेट में शुद्ध सब्जियां और आर्गेनिक मशरूम है कि नहीं। क्राफ्ट मम्मी पत्तियों और घास के कोलाज बनाकर अपने बच्चों को देती हैं और चाहती हैं कि वे भी हमेशा कुछ न कुछ बनाते रहे।

खेल और पढ़ाई के मामले में दवाब बनाने वाले माता–पिता सबसे बुरा प्रभाव उत्पन्न करते हैं। एक बच्ची के मां–बाप उसे सप्ताह में दो बार स्वीमिंग के लिए सुबह छह बजे के सेशन करने और पांच बार स्कूल के बाद के सेशन करने के लिए कहते हैं। यहां तक कि बच्ची का एक हाथ टूट जाने के बाद भी उस पर स्वीमिंग करने के लिए दवाब डाला जाता रहा। बच्ची को तैराकी के दौरान अपने टूटे प्लास्टर चढ़े हाथ को पानी से बाहर रखना पड़ता था। एक और टेनिस खिलाड़ी को उसकी मां ने ट्रेनिंग रोक देने के लिए कहा क्योंकि उन्हें लगता था कि उनकी बेटी जीत नहीं सकती। तो दवाब डालने और प्रेरित करने के बीच फर्क कैसे पता लगेगा? मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि वैसे माता–पिता जो जीवन में कुछ बनना चाहते थे लेकिन बन नहीं पाए, वे अपने बच्चों के जरिये उसे पूरा करना चाहते हैं। बेले व्यू में मुख्य मनोवैज्ञानिक डॉ. शिलादित्य राय कहते हैं कि ऐसे मां–बाप यह समझने में भूल कर जाते हैं कि संभव है कि उनके बच्चे भी वो काम न कर पाएं। विश्वद. ीप और सम्पाली के पिता करो या सजा पाओ की इसी

मानसिकता का ज्वलंत उदाहरण हैं। विश्वदीप की दुखद मौत पर खेल मनोवैज्ञानिक लैला दास कहती हैं कि पिता द्वारा लगातार दवाब बनाए जाने के कारण बच्चे के मन में डर बैठ गया होगा जिसके कारण उसे हार्ट अटैक आया होगा। अमेरिका की ओलंपिक जिम्नास्ट डॉमिनिक मॉकिनो जिन्होंने अपने मां–बाप से तलाक की मांग की है, कहती हैं कि उन्होंने कभी बचपन देखा ही नहीं। मैंने हमेशा सिर्फ जिम को देखा। मैं सोचती हूं जिम्नास्टिक के अलावा आपने क्या जाना। क्या हम आइसक्रीम खाने नहीं जा सकते? क्या आप मेरे मां और पापा नहीं हो सकते? बालीवुड में कभी टॉप शीर्ष बाल कलाकार रह चुकीं डेजी ईरानी बेहद बुरे अनुभव के बारे में बताती हैं ''शूटिंग के दौरान एक बार रोने का सीन होने पर मेरी मां ने मुझे चींटी काटा था ताकि मैं रोउं। मुझे शुरुआत में केवल दो साल के लिए स्कूल से हटाया गया था लेकिन दोबारा कभी स्कूल नहीं भेजा गया। मैंने कभी अपने कमाए पैसे को नहीं देखा। मुझे शूटिंग करने या कैमरे के सामने जाने से नफरत थी लेकिन मेरी मां को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। मुझे आजादी तब मिली जब मैंने अपने से कहीं ज्यादा उम्र के व्यक्ति से शादी कर ली। मैंने अपने तीनों बच्चों में से किसी पर भी उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करने के लिए दवाब नहीं डाला।'' राज कपूर की मशहूर फिल्म बूट पॉलिश में काम कर चुकीं बेबी नाज ने बताया था कि उनके मां–बाप हमेशा इस बात के लिए झगड़ते रहते थे कि उनके कमाए पैसे का हकदार कौन होगा जबकि वे स्टूडियो में रात के दस–ग्यारह बजे तक काम करने के बाद भूखी बैठी रहती थीं। मीना कुमारी ने छह साल की उम्र में फिल्मों में काम करना शुरू कर दिया था तो श्रीदेवी ने 4 साल की उम्र से। क्या वे इतनी परिपक्व थीं कि अपना फैसला खुद ले सकें? अगर ये उनका उत्पीड़न नहीं था तो और क्या था?

घरेलू हिंसा की सारी कहानियां बच्चियों और महिलाओं पर केन्द्रित होती हैं। बाल मजदूरी की सभी घटनाओं में उनसे काम करवाने वाले नियोक्ता निशाने पर रहते हैं। लेकिन जब मां–बाप ही अपने बच्चों का उत्पीड़न करने लगें, उनकी मौत का जिम्मेदार बन जाएं तो क्या करना चाहिए? अगर अब आप किसी बच्ची को अपनी बाथरूम से निकलती मां को यह कहते हुए देखें कि ''वह छोटी बच्ची की तरह लग रही है'' तो एक मिनट के लिए रुकें और उसे एक विकल्प देकर देखें कि यह बच्ची भी अपनी बालकनी में दूसरे बच्चों के साथ खेल रही है।

स्कूल में होता है हर तीन में से दो बच्चे का उत्पीड़न

वर्ष 2014 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने एक अध्ययन में बताया कि देश में हर तीन में से दो बच्चा स्कूल में शारीरिक उत्पीड़न का शिकार होता है। हाल ही में पटना के एक प्रतिष्ठित स्कूल के बच्चे ने शिक्षक के तानों से तंग आकर स्कूल की बिल्डिंग से छलांग लगा दी जिससे उसे गंभीर चोट आई। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि बच्चों के व्यवहार का अध्ययन तथा उन्हें 'अच्छा छूना और बुरा छूना' की जानकारी देना समय की जरूरत बन चुकी है और हर मां–बाप तथा शिक्षकों को इसके प्रति सचेत होना होगा। यूनिसेफ की मदद से किये गये एक अध्ययन में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने पाया कि 5 से 12 वर्ष तक के बच्चों के साथ स्कूल में मानसिक तथा शारीरिक उत्पीड़न की वारदातें ज्यादा होती हैं। हालांकि 70 फीसद से अधिक पीड़ित बच्चों या उनके परिवारों ने कभी मामले की रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि उत्पीड़न करने वाले ज्यादातर लोग वे होते हैं जिन पर मां–बाप और खुद बच्चे बहुत ज्यादा भरोसा करते हैं। 5 से 10 साल के बच्चे कुछ समझते हैं तो बहुत कुछ नहीं समझते हैं। जब उनके साथ कोई गलत हरकत करता है तो वे इसे अपनी गलती मान लेते हैं और उन्हें लगता है कि घर में यह बात बताने से उन्हें डांट पड़ सकती है। ऐसे में चुप रह जाते हैं और किसी से अपनी बात नहीं कहते। यहां पर मां–बाप को सतर्क रहना होगा और बच्चे के व्यवहार पर हमेशा नजर रखनी होगी। व्यवहार में थोड़ा सा भी अंतर आने पर उन्हें बच्चे से बात करनी होगी। दोस्त बनकर ही मां–बाप बच्चे के ज्यादा करीब जा सकते हैं। साथ ही बच्चे की काउंसिलिंग करानी भी बेहद जरूरी है।

बेगुनाह

सलाखों में कैद मासूमियत

अक्टूबर, 2013 – हरियाणा के भोंडसी जेल में अपनी मां मेहराम के साथ रहती है चार साल की मंताशा। 24 साल की मेहराम इसी साल दिसम्बर में जेल में अपने पांच साल पूरे करने वाली है। अपराध के लिए कुख्यात हरियाणा के मेवात की रहने वाली मेहराम को अपने पति की हत्या के आरोप में आजीवन कारावास की सजा मिली है। हालांकि जिस व्यक्ति ने वास्तव में उसके पति की हत्या की थी वो उसी के गांव में रहने वाला एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति था जो मेहराम को पसंद करता था। लेकिन मेहराम के ससुराल वालों ने उसका नाम भी पति की हत्या में जोड़ते हुए उसके खिलाफ गवाही दी जिसके कारण उसे सजा हो गई। अब शर्म और समाज का हवाला देते हुए ससुराल वालों ने उससे नाता तोड़ लिया है। भाग्य से मेहराम के मां–बाप ने उससे रिश्ता कायम रखा और उससे मिलने आते रहे। मायके वालों के रूप में मेहराम के पास अभी भी आर्थिक मदद मौजूद है। मेहराम के साथ ही भोंडसी जेल में पच्चीस दूसरी औरतें भी हैं जो किसी न किसी अपराध की सजा काट रही हैं। उनके जिम्मे बागवानी और सफाई जैसे काम हैं।

रुचिका निगम

(क्रिमिनोलॉजी व क्रिमिनल जस्टिस में एम.ए.। मानवाधिकार और जेल में सुधार को लेकर काम करती रही हैं।)

मेहराम की मां बेगम फातिमा अली जेल में अक्सर अपनी बेटी और नातिन से मिलने जाती रहती हैं। वे उन दोनों को आश्वस्त करती हैं कि उनके पास आश्रय और धन मौजूद है। जेल जाने के थोड़े समय के बाद ही मेहराम ने मंताशा को जन्म दिया था यानी मंताशा ने अब तक जेल के बाहर की दुनिया नहीं देखी है। उसका खाना, पीना और सोना सबकुछ जेल की दीवारों के भीतर ही हो पाता है। रोज सुबह साढ़े पांच बजे से मंताशा अपनी मां के आगे–पीछे जेल के कम्पाउंड में घूमना शुरू कर देती है जब तक कि मेहराम को उस दिन का काम नहीं दे दिया जाता। साढ़े 8 बजे मां–बेटी को जेल की ओर से दूध और कुछ पावरोटी दिया जाता है जिसमें दोनों को अपना पेट भरना पड़ता है। इसके तुरंत बाद मंताशा को जेल में बंद अन्य बच्चों के साथ नहाने के लिए कॉमन रूम में भेज दिया जाता है जहां नन्ही मंताशा खुद से नहाकर अपने छोटे–छोटे कपड़े भी खुद ही साफ करती है और फिर खुद ही कपड़े पहन कर तैयार भी हो जाती है। ध्यान देने की बात ये है कि जेल में बंद बच्चों को क्रेश में भेजना वैकल्पिक रखा गया है और उसे अनिवार्य नहीं माना गया है। ऐसे में महिला कैदियों को काउंसिलिंग के जरिये क्रेश के फायदों के बारे में समझाना बेहद जरूरी है। सुबह 9 बजे बच्चे जेल के भीतर बने क्रेश में पहुंचा दिये जाते हैं। क्रेश महिला जेल के कंपाउंड के भीतर ही बनाया गया है और बच्चों को रोज दिन का कुछ हिस्सा यहां व्यतीत करना पड़ता है। हालांकि एक साल पहले तक मंताशा के साथ यहां केवल एक और बच्ची थी और उसने कभी किसी पुरुष या लड़के को अपने आस–पास नहीं देखा था।

भारत में हर जेल का संचालन उस राज्य के नियमों के मुताबिक होता है और पूरे देश का जेल प्रशासन केन्द्रीय गृह मंत्रालय के अधीन आता है। जेल में बच्चों को अपनी मांओं, और कुछ मामलों में पिता, के साथ रहने की अनुमति उनके छह साल के होने तक होती है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के मुताबिक, 2012 के अंत तक 344 सजायाफ्ता महिलाएं और उनके 382 बच्चे तथा 1226 विचाराधीन महिलाएं एवं उनके 1397 बच्चे देश की जेलों में बंद थे। यानी देश में करीब 1800 बच्चे जेल प्रशासन के रहमोकरम पर जी रहे हैं।

मॉडल जेल मैन्युएल, 2003 कहता है कि हर जेल में एक अलग क्रेश और नर्सरी बनाई जानी चाहिए। हालांकि देश के ज्यादातर जेलों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है लेकिन भाग्यवश भोंडसी जेल उन कुछ जेलों में शामिल है जहां माता–पिता के साथ जेल में बंद बच्चों के संबंध में दिये गये सुप्रीम कोर्ट के दिशा–निर्देशों (जस्टिस अय्यर कमेटी 1986) का पालन किया जा रहा है। इस जेल में क्रेश दो कमरों से बना है जहां बच्चे खेलते और पढ़ते हैं। इसके साथ ही लगा हुआ एक मेडिकल रूम भी है जहां एक महिला डॉक्टर बच्चों और महिला कैदियों की जांच करती है। एक बी.ए. पास महिला कैदी को ही क्रेश का इंचार्ज बनाया गया है जो बच्चों को पढ़ाती भी है।

जेल के बाद जिंदगी

जेल से बाहर आ जाने के बाद भी ऐसे बच्चों की जिंदगी को सामान्य बनने में काफी समय लग जाता है। उनमें असुरक्षा की भावना पैदा हो जाती है। मंताशा का ही मामला लें तो मेहराम के परिवार वाले उस दिन का इंतजार कर रहे हैं जब उनकी बेटी जेल से रिहा हो जाएगी क्योंकि बाहर आते ही उसका निकाह अलीम के साथ कर दिया जाएगा। अलीम भी मेवात से है और बलात्कार सहित 35 से ज्यादा मामलों में जेल में बंद है। इतना ही नहीं वह भोंडसी जेल के सबसे कुख्यात कैदियों में जाना जाता है। फिर भी कई मौकों पर मेहराम अलीम से निकाह करने की इच्छा जता चुकी है। वह एक अच्छी मां है और मंताशा को पढ़ा–लिखा कर अच्छा इंसान बनाना उसकी प्राथमिकता है फिर भी वह इस बात पर ध्यान नहीं देना चाहती कि अलीम उसकी बेटी के लिए बुरा पिता साबित हो सकता है। आर्थिक और भावनात्मक मदद के लिए महिला कैदियों का इस तरह किसी के भी साथ विवाह कर लेने का चलन भारत में आम है। जेल से बाहर आने के बाद महिलाओं को उनके परिवार वाले अपनाने से

इंकार कर देते हैं लेकिन अगर वो विवाह कर ले तो समाज में उसे जगह मिलने की संभावना बढ़ जाती है।

एक चुनौतीपूर्ण प्रणाली

जेल में रह रहे अन्य बच्चों के मुकाबले मंताशा उन भाग्यशाली बच्चों में शामिल है जिसे सुविधायुक्त जेल में पैदा होने और रहने का मौका मिला है। उसे एक प्यार करने वाली मां और नानी मिली है तो पढ़ने और खेलने के लिए क्रेश भी मौजूद है। वह उस जेल प्रशासन पर आश्रित है जो पहले से ही कैदियों के अत्यधिक बोझ, भ्रष्टाचार, कर्मचारियों की कमी, अनट्रेंड स्टाफ और बाबूगिरी को झेल रहा है। इन सबके बीच जेल में रह रहे बच्चों पर जितना ध्यान दिये जाने की जरूरत है वो नहीं हो पाता।

संविधान के अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि ''कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं के अतिरिक्त अन्य किसी भी तरीके से किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत आजादी से वंचित नहीं रखा जा सकता।'' इसके अलावा अनुच्छेद 45 में ये कहा गया है कि संविधान के लागू होने के दस वर्ष के भीतर 14 साल तक के हर बच्चे को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी राज्य की है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि मंताशा जैसी बच्चियां अपने इस मानवाधिकार को कैसे पा सकती हैं। ऐसी बच्चियों को देखभाल के नाम पर अपनी मांओं के साथ जेल में धकेल दिया जाता है जहां उन्हें अपनी सेहत और आजादी के साथ समझौता करना पड़ता है। जीने के कठिन हालातों के अलावा बाहरी दुनिया से दूर रहकर जेल में बंद अन्य वयस्कों के बीच उन्हें अपना हर दिन गुजारना पड़ता है। बिना किसी गलती के उन्हें भी सामाजिक बाध्यताओं और असुरक्षा से जूझना पड़ता है। वैसे इसके लिए जेलों को पूरी तरह दोषी नहीं माना जा सकता क्योंकि वे भी शक्तिहीन हैं और 1894 के जेल एक्ट से बंधे हैं।

स्वयंसेवी संस्था 'इंडिया विजन फाउंडेशन' (आईवीएफ) जेल में अपने अभिभावकों के साथ रह रहे बच्चों को मुख्यधारा में लाने के लिए लंबे समय से प्रयास कर रही है। आईवीएफ ऐसे बच्चों को उनके परिवार से मिलाने का काम करती है और करीब 19 साल से वह तिहाड़ में रह रहे सैकड़ों बच्चों को मुख्यधारा में ला चुकी है। इसने 300 से ज्यादा बच्चों को जेल के क्रेश से निकालकर बाहर के स्कूलों में दाखिला दिलवाने में मदद की है। कुछ उम्मीद 1986 में जगी जब जेलों में बंद महिलाओं की स्थिति का आकलन करने के लिए केन्द्र सरकार ने जस्टिस कृष्णा अय्यर के नेतृत्व में राष्ट्रीय विशषज्ञ कमेटी का गठन किया। कमेटी ने जो रिपोर्ट सौंपी उसमें जेल में बंद गर्भवती महिलाओं तथा हाल ही में मां बनी महिलाओं का विशेष जिक्र किया गया।

हाल ही में एक जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने जेल में बंद महिलाओं और बच्चों के संबंध में कुछ दिशा–निर्देश जारी किये :

- महिला कैदियों को अपने बच्चों को छह साल की उम्र तक अपने साथ जेल में रखने की अनुमति दी जानी चाहिए।
- छह साल के बाद मां के परामर्श से बच्चे को उपयुक्त अभिभावक के पास रखा जाना चाहिए।
- इस दौरान बच्चे के खाने–पीने, कपड़ों और आश्रय व दवाओं का खर्च संबद्ध राज्य सरकार उठाएगी।
- जेल में महिला कैदियों के वार्ड के पास ही उनके बच्चों के लिए एक क्रेश और नर्सरी बनाया जाना चाहिए।
- तीन साल तक के बच्चों को क्रेश में तथा तीन से छह साल तक के बच्चों को नर्सरी में जगह मिलनी चाहिए।
- क्रेश और नर्सरी का संचालन जेल प्रशासन द्वारा किया जाना चाहिए।
- जेल में रह रहे बच्चों के पोषण के लिए हैदराबाद के नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ न्यूट्रीशन द्वारा जारी गाइडलाइन का पालन किया जाना चाहिए।
- अदालत द्वारा जारी दिशा–निर्देशों को तीन महीने के भीतर जेलों में लागू कर दिया जाना चाहिए।

यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी उपरोक्त निर्देशों का वास्तव में पालन किया जाय तो जेलों में बंद बचपन को समय से पहले ही कुम्हलाने से बचाया जा सकता है।

(यह आलेख इंडियाटुगेदर.कॉम में 'ए चाइल्डहुड लॉस्ट बिहाइंड बार्स' के नाम से प्रकाशित आलेख का हिंदी रूपांतरण है।)

चाइल्ड बजटिंग

बड़े बजट में 'छोटे' गुम

हर साल हमारी संसद करोड़ों–अरबों का बजट पास करती है। हर वर्ग, रोजगार, क्षेत्र और अवसरों से जुड़ी सैकड़ों योजनाएं लागू कराई जाती हैं। लेकिन क्या कभी इन बड़ी योजनाओं में उन छोटे–छोटे बच्चों को भी जगह मिलती है जो न तो अपने अधिकारों के लिए सड़क पर उतर सकते हैं और न ही राजनीतिक दवाब बना सकते हैं। अलबत्ता उन्हें तो अपने अधिकारों के बारे में पता तक नहीं होता। इसमें कोई शक नहीं कि बजट देश की तरक्की का आइना होते हैं और इसका मकसद संपूर्णता में देश का विकास करना होता है। लेकिन इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि बजट, नीतियों और योजनाओं को बनाने में बड़ा हाथ किसी न किसी ऐसे वर्ग का होता है जो सरकार के लिए वोट बैंक का काम करते हैं। महिलाएं, पिछड़ा वर्ग, किसान, कृषि श्रमिक और अन्य जाति आधारित वर्ग कहीं न कहीं सरकार के रहने या नहीं रहने को प्रभावित करते हैं और अपनी उपस्थिति से दवाब का निर्माण करते रहते हैं। मगर बच्चे ! वे न तो वोट बैंक होते हैं और न ही दवाब समूह, फिर उनके बारे में सोचने की जहमत भला कौन उठाएगा ?

बच्चे न तो वोट बैंक होते हैं और न ही दवाब समूह, फिर उनके बारे में सोचने की जहमत कोई क्यों उठाए ! बच्चों को तो अपने अधिकारों के बारे में पता तक नहीं होता।

आंकड़ों में जाएं तो पाएंगे कि 90 के दशक में बच्चों पर होने वाला आवंटन 1.2 फीसद से बढ़कर 2006–07 में 4.91 फीसद तक पहुंच गया लेकिन असलियत में न केवल यह आवंटन बेहद कम है बल्कि इसे सही रूप में खर्च भी नहीं किया जाता है। जरूरत, आवंटन और इस्तेमाल में अभी भी बहुत अंतर है। ऐसे में जरूरत है सटीक 'चाइल्ड बजटिंग' की। यानी वह पैमाना जिससे नीति निर्धारकों को यह पता चल पाए कि बच्चों की जरूरतों के हिसाब से कितनी राशि का आवंटन किया गया है और कितने की और जरूरत है। संयुक्त राष्ट्र की बाल अधिकार कमेटी यानी यूएनसीआरसी का सदस्य होने के नाते भारत भी बच्चों के अधिकारों की संरक्षा को लेकर सतर्क है और इस दिशा में प्रयास चाहता है। यूएनसीआरसी कहता है कि बच्चों के अधिकारों को सर्वोच्च स्तर तक साकार करने के लिए बजट में आवंटन को बढ़ाने के हर प्रयास किये जाने चाहिए। इसके लिए उपलब्ध संसाधनों का संपूर्ण इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

भारत न केवल 1992 के बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन का भागीदार है बल्कि यूएन के मिलेनियम डेवलपमेंट गोल यानी एमडीजी को प्राप्त करने के लिए भी प्रतिबद्ध है। इसके लिए 90 के दशक से लेकर अब तक की सरकारों ने बच्चों की बेहतरी और उनके हितों पर आधारित दर्जनों महत्वाकांक्षी योजनाएं भी बनाई हैं किंतु दुर्भाग्यवश उन योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों और प्राप्त परिणामों में मीलों का फासला है।

बजट 2016 में बच्चे

बात अगर मौजूदा हालात की करें तो निराशा ही हाथ लगेगी क्योंकि वर्तमान सरकार ने भी शिक्षा, स्वास्थ्य, विकास और पोषण जैसे अतिमहत्वपूर्ण बिंदुओं की उपेक्षा ही की है। विशेषकर उस आबादी के लिहाज से जो देश की कुल आबादी का 39 फीसद हिस्सा है। अलबत्ता वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में बच्चों का जिक्र तक नहीं किया। ये ठीक है कि पिछले वर्ष की 30 फीसद कटौती की तुलना में इस वर्ष के बजट में बच्चों की हिस्सेदारी 3.26 फीसद से बढ़कर 3. 32 फीसद तक पहुंच गई है। लेकिन महज .6 फीसद की इस बढ़ोतरी से बच्चों का कितना भला होने वाला है, यह देखना होगा।

बच्चों के संपूर्ण विकास से जुड़ी दुनिया की सबसे बड़ी योजना आईसीडीएस यानी इंटिग्रेटेड चाइल्ड डेवलपमेंट स्कीम में 2016 के बजट में 7 फीसद तक की कमी की गई है। इस बेहद जरूरी योजना में कटौती से संबंधित क्षेत्र हतप्रभ है। इसी तरह बच्चों के स्वास्थ्य से जुड़े कार्यक्रमों में बंपर कटौती करते हुए उसे पिछले साल के 15,483.77 करोड़ से घटाकर 14,000 करोड़ कर दिया गया है। मीड डे मील स्कीम में पिछले वर्ष की तुलना में आवंटन 0.49 फीसद से बढ़ाकर 0.74 फीसद कर दिया है जिसके बाद अब यह 9,700 करोड़ हो जाता है। बजट की घोषणा से ठीक पहले होने वाले आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया था कि देश की आबादी का सही इस्तेमाल करना है तो बच्चों के पोषण से जुड़े कार्यक्रमों में निवेश को बढ़ाना होगा लेकिन आईसीडीएस में कटौती कर सरकार ने अपने मंसूबे साफ कर दिये। यही हाल बाल सुरक्षा से जुड़ी योजनाओं का भी रहा। 2015 में जेजे

एक्ट के लागू होने के बाद से जहां इस सेक्टर में अधिक निवेश की उम्मीद जताई जा रही थी वहीं सरकार ने 2016 के बजट में इसके मुख्य कार्यक्रम आईसीपीएस में आवंटन को 2015 के 402.23 करोड़ से घटाकर 397 करोड़ पर ला दिया। सर्वशिक्षा अभियान में 2.2 फीसद की वृद्धि की गई है और इसे पिछले वर्ष के 22,000 करोड़ से बढ़ाकर 22,500 करोड़ कर दिया गया है। हालांकि यह राशि अभी भी 2014 के 27,758 करोड़ से कहीं कम है।

बच्चों के लिए नीतियां

देश में पहले–पहल 1974 में बच्चों के अधिकारों और उनकी जरूरतों की ओर नीति निर्माताओं का ध्यान गया और एक राष्ट्रीय नीति का निर्माण किया। हाल ही में 2013 में बच्चों के लिए नई राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई जिसमें धर्म, प्रथा, संस्कृति तथा रिवाजों को परे रखते हुए देश के हर बच्चे के सम्मान, सुरक्षा और आजादी को बनाये रखने तथा उन्हें समान अधिकार और अवसर प्रदान करने के लिए जरूरी कदम उठाये जाने की प्रतिबद्धता दिखाई गई है।

नई राष्ट्रीय नीति कहती है कि

- 18 वर्ष से कम उम्र का व्यक्ति बालक कहा जाएगा।
- बालपन जीवन का अभिन्न अंग है और इसका अपना महत्व है।
- बच्चे किसी आम समूह का हिस्सा नहीं हैं बल्कि इनकी अपनी अलग जरूरतें हैं जिनकी अलग प्रकार से पूर्ति की जा सकती है। खासकर भिन्न परिस्थितियों में रहने वाले बच्चों की आवश्यकताएं भिन्न होती हैं।
- बच्चों के संपूर्ण विकास और संरक्षा के लिए दीर्घकालिक, स्थायी, एकीकृत और विशिष्ट प्रयास करने की जरूरत है।

1974 से लेकर अब तक सरकारों ने बच्चों के विकास, उनकी उत्तरजीविता और सुरक्षा से जुड़ी कई अन्य योजनाओं और नीतियों को भी लागू किया है।

बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति, 1974 : पहली बार नीतिगत रूप से बच्चों को देश के लिए संपत्ति माना गया। इसके तहत संविधान में प्रदत्त बाल अधिकारों और उनसे जुड़े प्रावधानों को लागू करने का लक्ष्य रखा गया। साथ ही संयुक्त राष्ट्र की अधिकारों की घोषणा को भी लागू किया गया। इस नीति ने राज्यों के दायित्वों की रूप–रेखा तैयार कर दी जिसके मुता. बिक बच्चे के जन्म से पहले से लेकर जन्म के बाद तक तथा बालपन के दौरान उसकी तमाम मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक विकास की जिम्मेदारी राज्यों की होगी।

शिक्षा को लेकर राष्ट्रीय नीति, 1986 : इस वर्ष को सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराने तथा भेदभाव को समाप्त करने के लक्ष्य के साथ मनाया गया। महिलाओं, अनुसूचित जाति तथा जनजातियों को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय नीति बनाई गई जिसके तहत छात्रवृत्ति, वयस्क शिक्षा, शिक्षकों की नियुक्ति, गरीब परिवारों के लिए अनुदान ताकि वे अपने बच्चों को स्कूल भेज सकें और नई शिक्षा संस्थानों के निर्माण आदि की व्यवस्था की गई। बच्चों को केन्द्र में रखकर बनाई गई नीति के दौरान 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' भी चलाया गया जिसका उद्देश्य प्राथमिक

चित्र : किरणविलेज.ऑर्ग

बच्चों के लिए राष्ट्रीय कार्ययोजना, 2005 : भारत सरकार ने वर्ष 2005 में इस कार्ययोजना को अपनाया था जिसका लक्ष्य था बच्चों के हित में और उनकी सुरक्षा के लिए हर उपाय को अपनाना। इसके तहत जिन बातों को प्राथमिकता दी गई उनमें कन्या भ्रूण हत्या को रोकना, कन्या शिशु हत्या को रोकना, बाल विवाह को समाप्त कर बच्चों को आजादी से जीने का अधिकार देना, लड़कियों को सुरक्षा देना और उनके विकास के लिए लगातार प्रयास करते रहना। इसके अलावा कठिन परिस्थितियों में रह रहे बच्चों के अधिकारों की रक्षा करना, बच्चों के सभी वैधानिक और सामाजिक जरूरतों की रक्षा करना और उनका हर प्रकार के उत्पीड़न, शोषण और उपेक्षा से बचाव करना। बच्चों से जुड़ी हर बात की समीक्षा करने और उन्हें अपडेट करते रहने के लिए सरकार ने कई अन्य योजनाएं भी शुरू की हैं।

स्कूलों में उपस्थिति को बढ़ाना था।

बाल श्रम को लेकर राष्ट्रीय नीति, 1987 : देश में बड़ी संख्या में बाल श्रमिकों के होने की रिपोर्ट आने के बाद चिंतित सरकार ने 1987 में बाल श्रमिकों पर आधारित राष्ट्रीय नीति को लागू किया। यह नीति उन इलाकों में बच्चों के कल्याण को लेकर कटिबद्ध थी जहां बाल श्रमिकों की संख्या अधिक थी। इसके तहत बच्चों के हित में कार्ययोजना बनाने और उन्हें लागू करने पर जोर दिया गया।

राष्ट्रीय पोषण नीति, 1993 : भारत लंबे अरसे से बच्चों में कुपोषण की समस्या को झेल रहा है। असल में कुपोषण भोजन, उत्तरजीविता और स्वास्थ्य के अधिकारों तक बच्चों की पहुंच न होने से उत्पन्न हुई समस्या है जो देश को दक्षता और कार्यक्षमता से जुड़ी कई अन्य परेशानियों की ओर धकेल रहा है। 1993 में बनी पोषण नीति खाद्य उत्पादन एवं वितरण, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, शिक्षा, ग्रामीण व शहरी विकास तथा महिला एवं बाल विकास के क्षेत्रों में अल्पकालिक अथवा दीर्घकालिक हस्तक्षेप की अनुमति देती है।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 : इस नीति के अंतर्गत भी बच्चों के हितों को विशेष तौर पर ध्यान में रखा गया। इसने 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने, सभी बच्चों को सभी बचाव योग्य रोगों से मुक्ति के लिए टीकाकरण करने, जन्म, मृत्यु तथा विवाह का सौ फीसद पंजीकरण, मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में उल्लेखनीय कमी लाने का लक्ष्य सामने रखा।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2002 : यह नीति हर देशवासी के लिए एक निर्धारित स्तर तक अच्छे स्वास्थ्य की गारंटी देती है। इसके लिए गैरकेन्द्रीकृत सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली तक आम आदमी की पहुंच को आसान बनाने पर जोर दिया गया। साथ ही पहले से मौजूद आधारभूत संरचनाओं को दुरुस्त करने और नई संरचनाओं के निर्माण का भी लक्ष्य रखा गया।

बच्चों के लिए नेशनल चार्टर, 2003 : बच्चों की मौलिक जरूरतों को पूरा करने में नागरिक समाज, समुदाय और परिवार की भूमिकाओं को तय करने का काम नेशनल चार्टर ने किया। इसने हर बच्चे के जीने, स्वस्थ रहने और खुश रहने के अधिकार की वकालत की। इसके लिए पिछड़े परिवारों के बच्चे, गलियों में रहने वाले और लड़कियों को टारगेट समूह में रखकर राज्यों और समुदायों की जिम्मेदारी तय की गई।

महत्वपूर्ण है राज्यों की भूमिका

यूनिसेफ की रिपोर्ट 'चाइल्ड बजटिंग इन इंडिया' में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच की दूरी को चाइल्ड बजटिंग के मार्ग में बड़ी बाधा माना गया है। इसमें साफ कहा गया है कि इस दिशा में राज्यों को खुद आगे आना होगा और बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए बजट आवंटन की अगुवाई करनी होगी। वे राशि के लिए कुछ हद तक केन्द्र पर निर्भर जरूर हैं लेकिन सामाजिक क्षेत्र के प्रावधान बनाने की प्राथमिक जिम्मेदारी उन्हीं की है। देखा गया है कि ज्यादातर राज्य स्वास्थ्य क्षेत्र में बच्चों पर समुचित राशि आवंटित करने में लापरवाही दिखाते हैं। न केवल वे केन्द्र द्वारा प्रदत्त राशि का इस्तेमाल करने में पीछे रहे हैं बल्कि खुद भी राशि जारी करने में आनाकानी करते रहे हैं। राज्यों के इस रवैये से सामाजिक क्षेत्र की योजनाओं को झटका लगता है। उनका वांछित परिणाम सामने नहीं आ पाता है। उदाहरण के लिए 1993–94 में केन्द्र सरकार प्रति व्यक्ति 89 रुपये खर्च करती थी जो 2003–04 में बढ़कर 122 रुपये हो गया। लेकिन केन्द्र द्वारा हुई इस बढ़ोतरी का कोई प्रभाव राज्यों के स्वास्थ्य संबंधी खर्च पर नहीं हुआ। राज्यों ने अपने यहां के खर्च में वृद्धि नहीं की। जैसे कि वर्ष 2003–04 में बिहार में प्रति व्यक्ति खर्च 77 रुपये था तो उत्तर प्रदेश में 91 रुपये तथा राजस्थान में 98 जबकि केरल में 275, पंजाब में 294 और दिल्ली में 485 रुपये था। राज्यों में प्रति व्यक्ति खर्च में यह बड़ा अंतर उनके रवैये को साफ दर्शाता है।

इतना ही नहीं बच्चों से जुड़े जिस क्षेत्र में खर्च अधिक होना चाहिए उनमें सरकारें अपेक्षाकृत कम राशि आवंटित करती हैं जिसका खराब असर बच्चों के अधिकारों और उनके विकास पर पड़ता है। जिन राज्यों में बच्चों की संख्या ज्यादा है वहां बच्चों से जुड़ी योजनाओं पर खर्च बेहद कम देखा गया है। हालांकि इसमें राज्यों की लचर वित्तीय स्थिति एक बड़ा कारण है। राज्य बच्चों की योजनाओं के आवंटन में कटौती कर देते हैं जिसका प्रभाव केन्द्र प्रायोजित योजनाओं पर भी पड़ता है।

केन्द्रीय बजट में सेक्टर के हिसाब से हिस्सेदारी

वर्ष	स्वास्थ्य	विकास	शिक्षा	सुरक्षा	अन्य
2012-2013	0.18	1.10	3.44	0.04	95.24
2013-2014	0.16	1.10	3.34	0.03	95.36
2014-2015	0.16	1.06	3.26	0.04	95.49
2015-2016	0.13	0.51	2.57	0.05	96.74
2016-2017	**0.12**	**0.77**	**2.40**	**0.03**	**96.68**

स्त्रोत : हक : सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स

मासूमियत को लगी नजर

भारत 440 मिलियन बच्चों का देश है। दुनिया के कुल बच्चों की आबादी का 19 फीसद भारत में मौजूद है। संख्या अधिक है तो उसे सम्भालने का दायित्व भी उतना ही बड़ा है। लेकिन पिछले वर्षों में हमारे बच्चों का भविष्य असुरक्षित होता दिखा है। एक अनुमान के मुताबिक देश के 40 फीसद बच्चों को सुरक्षा और देखभाल की जरूरत है।

वर्ष 2007 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने देश में बच्चों के उत्पीड़न से जुड़े एक अध्ययन में कई तथ्यों को उजागर किया। 13 राज्यों के 12447 बच्चों, 2324 किशोरों और 2449 भागीदारों पर किया गया यह अध्ययन दुनिया में इस तरह का सबसे बड़ा अध्ययन था। इस अध्ययन में बच्चों से जुड़ी तमाम बातें शामिल थीं जिनमें शारीरिक, मानसिक व यौन उत्पीड़न तथा पांच अलग–अलग प्रमाण समूहों में बालिकाओं की उपेक्षा यथा परिवार, विद्यालय, कार्यस्थल, संस्थान एवं गलियां, प्रमुख रहीं। इस अध्ययन के परिणामों ने पूरे देश को चौंका दिया था। जो विषय अब तक उपेक्षित रहा था और जिस वर्ग की समस्याओं को अब तक लोगों ने अनदेखा किया था उनकी सच्चाई जानने के बाद सबकी आंखें झुक गई थीं। रिपोर्ट में बताया गया कि 5 से 12 वर्ष तक के बच्चे उत्पीड़न और उपेक्षा के सबसे बड़े शिकार हैं। इसके अलावा जो तथ्य सामने आए वे निम्न हैं –

शारीरिक उत्पीड़न

- अध्ययन में शामिल हर तीन में से दो बच्चों का शारीरिक उत्पीड़न किया गया।
- शारीरिक उत्पीड़न के शिकार 13 राज्यों के 69 फीसद बच्चों में से 54.68 बच्चे लड़के थे।
- 13 राज्यों के 50 फीसद से अधिक बच्चे एक या अधिक प्रकार के शारीरिक उत्पीड़न के शिकार थे।
- परिवार में उत्पीड़न के शिकार बच्चों में से 88.6 फीसद को माता–पिता ही प्रताड़ित करते थे।
- स्कूल जाने वाले 65 फीसद बच्चों ने शारीरिक सजा दिये जाने की बात कही।
- 62 फीसद शारीरिक सजा सरकारी और निगम के स्कूलों में दी गई।
- आंध्र प्रदेश, असम, बिहार और दिल्ली उन राज्यों में रहे जहां बच्चों का हर प्रकार का उत्पीड़न सबसे ज्यादा हुआ।
- ज्यादातर बच्चों ने अपने साथ हुए दुर्व्यवहार की चर्चा किसी सक नहीं की।
- 50.2 फीसद बच्चे सप्ताह में सातों दिन काम करते थे।

यौन उत्पीड़न

- 53.22 फीसद बच्चों ने एक या कई प्रकार के यौन उत्नीड़न का शिकार होने की बात कही।
- आंध्र प्रदेश, असम, बिहार और दिल्ली में सबसे ज्यादा बच्चों के साथ यौन उत्पीड़न की बात सामने आई जिनमें लड़के और लड़कियां दोनों शामिल रहीं।
- 21.90 फीसद बच्चे यौन उत्पीड़न के घृणित रूप का शिकार हुए जबकि 50.76 फीसद अन्य प्रकार से पीड़ित रहे।
- 5.69 फीसद बच्चे दुष्कर्म का शिकार हुए।
- आंध्र प्रदेश, असम, बिहार और दिल्ली में बच्चों के साथ दुष्कर्म की घटनाएं ज्यादा हुईं।
- गलियों में रहने वाले, काम करने वाले और किसी संस्था में रहने वाले बच्चों के साथ यौन उत्पीड़न की घटनाएं ज्यादा सामने आईं।
- 50 फीसद बच्चों का उत्पीड़न उन लोगों ने किया जो बच्चे के करीबी थे और जिन पर बच्चों या उनके परिवार का पूरा भरोसा था।
- ज्यादातर बच्चों ने अपने साथ हुए अत्याचार के बारे में किसी को नहीं बताया।

भावनात्मक उत्पीड़न तथा बालिकाओं की उपेक्षा

- हर दूसरे बच्चे के साथ भावनात्मक खिलवाड़ किया गया।
- भावनात्मक उत्पीड़न सहने के मामले में लड़के और लड़कियों का अनुपात समान रहा।
- 83 फीसद मामलों में माता–पिता ने ही अत्याचार किया।
- 48.4 फीसद लड़कियों की चाहत थी कि वे लड़का पैदा होतीं।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की यह रिपोर्ट जहां देश में बच्चों की स्थिति को जाहिर करती है वहीं कई ऐसे अध्ययन भी हुए हैं जो पूरी दुनिया में बच्चों के साथ उत्पीड़न की वारदातों को सामने लाते हैं। संयुक्त राष्ट्र महासचिव की बच्चों पर हिंसा को लेकर प्रकाशित एक रिपोर्ट में अलग–अलग अध्ययनों के आधार पर बताया गया है –

- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के मुताबिक, वर्ष 2002 में दुनिया भर में 53000 बच्चों की हत्या की गई।
- ग्लोबल स्कूल आधारित स्टूडेंट हेल्थ सर्वे द्वारा विकासशील देशों में किए गए एक सर्वे में पाया गया कि 30 दिनों के भीतर 20 से लेकर 65 फीसद बच्चों को स्कूल में किसी न किसी प्रकार से शारी. रिक या मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया। यही संख्या में औद्योगिक देशों में भी देखने को मिली।

- एक अनुमान के मुताबिक, 18 वर्ष से कम उम्र की 150 मिलियन लड़कियों और 73 मिलियन लड़कों को जबर्दस्ती सेक्स क्रिया में शामिल कराया गया या उन्हें अन्य प्रकार से यौन उत्पीड़न का शिकार बनाया गया।
- यूनिसेफ के मुताबिक, अफ्रीका के सब सहारा, ग्रीस और सूडान में हर साल 3 मिलियन लड़कियों और महिलाओं का खतना कराया जाता है।
- आईएलओ बताता है कि 2004 में 218 मिलियन बच्चे बाल श्रमिक के रूप में काम कर रहे थे। इनमें से 126 मिलियन बच्चे खतरनाक और जोखिम भरे कार्य में संलग्न थे। इससे पहले वर्ष 2000 के अध्ययन में पाया गया कि 5.7 मिलियन बच्चे बंधुआ मजदूर थे, 1.8 मिलियन बच्चे वेश्यावृत्ति या पोर्नोग्राफी में संलिप्त थे तथा 1.2 मिलियन बच्चे तस्करी का शिकार थे।
- दुनिया भर में केवल 2.4 फीसद बच्चे ही शारीरिक दंड से बचने के लिए कानूनी रूप से सुरक्षित हैं।
- दुनिया में सबसे ज्यादा बच्चे दक्षिण एशिया में रहते हैं लेकिन यहां रहने वाले अधिसंख्य बच्चों को स्वास्थ्य, पोषण तथा शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है।
- एशिया में बच्चों को उत्पीड़न से बचाने तथा उनके अधिकारों के लिए अभी भी अत्यधिक काम किये जाने की जरूरत है।

बच्चों के साथ यौन उत्पीड़न की वारदातों के बारे में पूरी जानकारी इकट्ठा कर पाना बेहद मुश्किल काम है क्योंकि वे इस बारे में सही–सही बता नहीं पाते हैं। बच्चे अपने साथ हुई घटना को ठीक से समझ भी नहीं पाते हैं। इसके अलावा 'उत्पीड़न' शब्द की भी ठीक ढंग से व्याख्या नहीं की गई है। यह देश और प्रांत के हिसाब से बदलता रहता है। ऐसे में बाल उत्पीड़न के सटीक आंकड़े जुटा पाना सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं दोनों के लिए चुनौतीपूर्ण है। इसके बाद भी सरकार यह मानती है कि देश में बच्चों के उत्पीड़न के मामले खतरनाक स्तर तक पहुंच चुके हैं और इससे बचाव तथा न्याय की समुचित व्यवस्था करनी होगी। यदि हम समय रहते बच्चों को बचा नहीं पाये तो यह हमारी बड़ी विफलता होगी।

'पोक्सो' की छतरी मिली मगर सुरक्षा नहीं

किसी यौन क्रिया में बच्चों की संलिप्तता, जिसकी उसे पूर्ण समझ न हो और न ही वह सहमति देने की स्थिति में हो, और जो कानून अथवा सामाजिक प्रतिबंधों का उल्लंघन करता है, बाल यौन उत्पीड़न मानी जाएगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन की इस परिभाषा में बाल उत्पीड़न और बाल यौन उत्पीड़न के अंतर को समझना होगा। बाल उत्पीड़न मनोवैज्ञानिक, शारीरिक अथवा यौन आधारित हो सकता है मगर बाल यौन उत्पीड़न का तात्पर्य केवल उन संकेतों, बातों, चित्रों तथा क्रियाओं से है जो बच्चे को सेक्स व्यवहार में संलिप्त करते हैं।

यूं तो हमारे देश में पीडोफीलिया, यानी बाल यौनाचार की प्रवृत्ति पहले से भी पाई जाती रही है लेकिन पिछले कुछ समय से इसने गंभीर और अमानवीय रूप अख्तियार कर लिया है। ऐसे में 'द प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन फ्रॉम सेक्सुअल ऑफेंसेस एक्ट, 2012' यानी पोक्सो बच्चों को यौन दुराचार से बचाये रखने और उनकी मर्यादा की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। कानून ऐसे मामलों की सुनवाई के लिए विशेष न्यायालय के गठन की भी वकालत करता है। इसके तहत जिन्हें दंडनीय अपराध बताया गया है उनमें यौन

हिंसा, यौन प्रताड़ना, यौन उत्पीड़न के लिए उकसाना और बच्चों को पोर्नोग्राफी वीडियो में प्रदर्शित करना शामिल हैं। कानून बच्चों की यौन प्रताड़ना से जुड़ी हरेक गतिविधि का संज्ञान लेता है और उसके विरुद्ध हर संभव कदम उठाने का भरोसा दिलाता है। यह कानून जम्मू–कश्मीर को छोड़कर पूरे देश में लागू है। इस कानून के तहत जो दंडात्मक निर्देश दिये गये हैं वे कई रूपों में विद्यमान हैं। इनमें कैद से लेकर जुर्माने तक का प्रावधान है। इसके अलावा बच्चे के पुनर्वास का भी आदेश कानून देता है।

क्या है पोक्सो कानून

अन्य कानूनों की अपेक्षा यह अकेला ऐसा कानून है जो बाल यौन प्रताड़ना के आरोपी को तब तक दोषी मानता है जब तक कि उसे निर्दोष घोषित न कर दिया जाय। हालांकि इससे कई बार निर्दोषों को भी सजा मिलने की आशंका बढ़ जाती है।

- इसके अलावा बच्चों के साथ यौनाचार होने पर दर्ज होने वाली पुलिस रिपोर्ट की किसी मेडिकल या फिर बाल मनोवैज्ञानिक से जांच कराना आवश्यक है। इसमें सबसे बड़ी समस्या यह है कि यदि रिपोर्ट की जांच में किसी भी प्रकार की गलत धारणा बन गई तो इससे पूरे मामले और बच्चे पर दीर्घकालिक असर पड़ सकता है।
- कानून पीड़ित बच्चे और डॉक्टर के बीच गोपनीयता पर जोर देता है और यह व्यवस्था करता है कि बाल यौन शोषण से जुड़े मामले की रिपोर्ट दर्ज कराने वाले के विरुद्ध कोई सिविल या क्रिमिनल केस नहीं दर्ज कराया जाएगा।
- यदि जानकारी होने के बाद भी मामले की रिपार्ट दर्ज नहीं कराई जाती है तो दोषी व्यक्ति पर जुर्माना या छह महीने की कैद दोनों हो सकती है।
- बाल यौनाचार और भी ज्यादा गंभीर अपराध बन जाता है यदि इसमें संलिप्त व्यक्ति किसी कानूनी पद पर हो, पुलिस अधिकारी, फौजी, सरकारी कर्मचारी, पुनर्वास अधिकारी, रिमांड होम या जेल, अस्पताल और शिक्षा से जुड़ा हो।
- यदि बाल यौन हिंसा से जुड़ा मामला किसी विशेष जुवेनाइल पुलिस यूनिट या स्थानीय थाने में दर्ज कराया जाता है तो उसकी जिम्मेदारी है कि बच्चे की सुरक्षा, इलाज और पुनर्वास की तुरंत व्यवस्था करे।
- पोक्सो बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए विशेष कोर्ट की भी व्यवस्था करता है और पीड़ित बच्चे को अभियोग की कार्रवाई से भी दूर रखता है।
- केन्द्र और राज्य सरकारें ने प्रचार और मीडिया के हर माध्यम से इस कानून के प्रति लोगों में जागरूकता फैलाने की कोशिश की है।

कानून की बाधाएं

- पोक्सो तभी प्रभावी बन सकता है जब बाल यौनाचार से जुड़े मामले की शिकायत दर्ज कराई जाएगी।
- प्रशिक्षण के अभाव में बच्चों से जुड़े मामलों को संभाल पाने में हमारी पुलिस ज्यादातर अयोग्य ही साबित हुई है।
- यौन प्रताड़ना को झेलने वाला बच्चा जिंदगी के सबसे भयानक दौर से गुजर रहा होता है ऐसे में न केवल से बल्कि उसके परिवार को भी पर्याप्त सुरक्षा और मनोवैज्ञानिक परामर्श की जरूरत होती है लेकिन हमारे देश में इतना खर्च वहन करने की न तो जरूरत समझी जाती है और न उसके लिए इतना साधन होता है।
- जरूरी है कि ऐसे मामलों की सुनवाई से पहले, सुनवाई के दौरान और सुनवाई के बाद अस्पतालों और अधिकारियों के लिए राज्य सरकार दिशा–निर्देश जारी करे। किंतु ऐसा नहीं हो पा रहा है।
- बच्चों से जुड़े मामलों को संभालने के लिए पुलिस और प्रशासन के अधिकारियों के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण की जरूरत है जो नहीं हो रहा है।
- कानून यह भी कहता है कि उपयुक्त साधनों के माध्यम से इसका प्रचार–प्रसार कराया जाय और लोगों में जागरूकता फैलाई जाय।
- देश में ऐसे मामलों की बढ़ती संख्या को देखते हुए यह जरूरी है कि इस पर ज्यादा से ज्यादा अध्ययन कराया जाय।

चित्र : srohitcnn.files.wordpress.com

दत्तक

तारे जमीं पर

'मर्फी बेबी सिंड्रोम' से ग्रस्त लोगों को बच्चा स्वस्थ, सुंदर और गोरा चाहिए होता है जो बहुत कम ही संभव हो पाता है। यदि अपनी संतान बीमार हो या उसे कोई अपंगता हो तो मां–बाप उसे ठीक करने के लिए पैसा पानी की तरह बहाने के लिए तैयार हो जाते हैं लेकिन एक गोद लिए बच्चे पर इतना खर्च करना वो नहीं चाहते।

श्रोत : न्यूइंडियनएक्सप्रेस.कॉम

- देश में 50 हजार अनाथ बच्चों को आज भी किसी का इंतजार है।
- देश में करीब 30 हजार दंपति बच्चे के लिए तरस रहे हैं।

दो आंकड़े, दो तस्वीरें और एक–दूसरे से पूरी होतीं दो जरूरतें। चाहिए तो सिर्फ एक पहल। अगर हर बच्चे को मां–बाप मिल जाय और हर मां–बाप को एक बच्चा तो तस्वीर बदलते देर नहीं लगेगी। लेकिन अफसोस कि अपने देश में बच्चा गोद लेने की दर पहले की तुलना में काफी घट गई है। ताज्जुब है कि नई सोच की पोषक और पुरातनपंथी मान्यताओं को नकारने वाली शिक्षा और बदलाव के बाद भी न लोग बदल रहे हैं और न सरकारें।

दीपिका झा

डेढ़ साल पहले महिला एवं बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने भी कहा था कि लोग हर साल केवल 800 से एक हजार बच्चों को ही गोद ले रहे हैं। यह शर्मनाक है। दत्तक एजेंसियों की सुस्ती पर कटाक्ष करती श्रीमती गांधी की यह टिप्पणी देश में अनाथ बच्चों के प्रति संवेदनहीनता को उजागर करती है। इससे पहले वर्ष 2013–14 में 4 हजार बच्चों को गोद लिया गया था जो उससे पहले के सालों की तुलना में बहुत कम था। यानी देश में बच्चों को गोद लेने वालों की संख्या में तेजी से गिरावट आ रही है। ये स्थिति तब है जब सरकार ने दत्तक ग्रहण की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए नए दिशा–निर्देश जारी किये हैं और उसे जुव. नाइल जस्टिस बिल, 2014 के साथ जोड़ दिया है। इसके अलावा अगस्त, 2015 में 'चाइल्ड एडॉप्शन रिसोर्स इंफॉर्मेशन एंड गाइडेंस सिस्टम' यानी केयरिंग्स को भी लागू किया गया जो गोद लेने की लंबी प्रक्रिया को सीमित करता है और गोद लेने के इच्छुक अभिभावकों की भागदौड़ को कम करता है। इसके बाद भी देश में बच्चों को गोद लेने वालों की संख्या में एक साल के भीतर 25 फीसद से ज्यादा की कमी हुई है। हालांकि आश्चर्यजनक रूप से देश के बाहर रहने वाले लोगों द्वारा यहां के बच्चों को गोद लेने की संख्या में इजाफा हुआ है।

देश के विभिन्न राज्यों के अनाथालयों में कितने बच्चे मौजूद हैं इसका सही–सही आंकड़ा तो किसी के पास नहीं है लेकिन 2013 में नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो ने दावा किया था कि केवल 930 बच्चे ही अनाथालयों में रह रहे हैं। जाहिर है इस दावे में रत्ती भर भी सच्चाई नहीं है क्योंकि वर्ष 2011 में सुप्रीम कोर्ट में दायर एक जनहित याचिका में जो आंकड़ा पेश किया गया है वह इससे 10 हजार गुना से भी ज्यादा है। इसके मुताबिक देश भर के अनाथालयों में करीब 11 मिलियन बच्चे किसी के द्वारा अपनाए जाने का इंतजार कर रहे हैं और इनमें 90 फीसद लड़कियां हैं। दूसरी ओर स्वयंसेवी संस्था चाइल्डलाइन इंडिया फाउंडेशन की मानें तो 2007 में देश में 25 मिलियन अनाथ बच्चे मौजूद थे। इनमें से हर साल केवल 0.04 फीसद बच्चे ही दत्तक ग्रहण प्रक्रिया द्वारा अपनाए जाते हैं।

पिछले पांच सालों में गोद लेने की दर में 50 फीसद की गिरावट आई है जो चिंतनीय है। बिहार, उत्तराखंड, झारखंड और पूर्वोत्तर के सातों राज्य अनाथ बच्चों के प्रति अधिक संवेदनहीन बने हुए हैं और वहां गोद लिये जाने की दर अत्यंत कम है जबकि दक्षिणी राज्यों में स्थिति थोड़ी ठीक है। हालांकि महाराष्ट्र जहां सबसे ज्यादा बच्चे गोद लिये जाते हैं, वहां भी इसकी दर घटी है और यह 2010 के 1606 के मुकाबले 2013 में घटकर 1212 हो गई थी। उत्तर भारत में पारंपरिक सोच और सरकार की उदासीनता का परिणाम बच्चों को भुगतना पड़ रहा है। पूर्वोत्तर में तो ऐसी कोई सरकारी दत्तक ग्रहण एजेंसी भी नहीं है जो लोगों को सही जानकारी देकर गोद लेने में उनकी मदद कर सके। यहां तक कि बिहार में 2007–08 के दौरान गोद लिये गये एक भी बच्चे का जन्म प्रमाणपत्र नहीं बनवा सकी सरकार। सबसे बुरी स्थिति मेघालय की है जहां पिछले पांच वर्षों में केवल चार बच्चों को गोद लिया गया है। इसी तरह चंडीगढ़ में 2010 से 2014 तक मात्र 9 अनाथ बच्चों को मां–बाप मिल सके थे।

दरअसल बच्चा गोद लेने की इच्छा रखने वाले लोगों की अपेक्षाएं इतनी बड़ी होती हैं कि उनके पूरा होने की गुंजाइश काफी कम हो जाती है। 'मर्फी बेबी सिंड्रोम' से ग्रस्त लोगों को बच्चा स्वस्थ, सुंदर और गोरा चाहिए होता है जो बहुत कम ही संभव हो पाता है। यदि अपनी जैविक संतान बीमार हो या उसे कोई शारीरिक अपंगता हो तो मां–बाप उसे ठीक करने के लिए पैसा पानी की तरह बहाने के लिए तैयार हो जाते हैं लेकिन एक गोद लिए बच्चे पर इतना खर्च करना वो नहीं चाहते। ऐसे में बीमार या अपंग बच्चों को कोई गोद नहीं लेना चाहता। इसके अलावा 85 फीसद लोगों को 0 से 1 साल तक के बच्चे की चाहत होती है। बेटे को गोद लेने की मंशा एक अलग कारण है क्योंकि देश के अनाथालयों में 90 फीसद लड़कियां हैं। विशेषज्ञ बताते हैं कि आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के विस्तार होने और आईवीएफ तथा सरोगेसी को अपनाए जाने के कारण भी लोगों में अनाथ बच्चों को गोद लेने की चाहत घटी है। भारत में अभी भी बच्चा

दत्तक

गोद लेने का विकल्प सबसे आखिरी में आता है। वैसे दंपति जिन्हें अपनी संतान नहीं है वे शादी के बाद 20–20 सालों तक अपने बच्चे का इंतजार करते हैं लेकिन जब तक बच्चा गोद लेने का फैसला लेते हैं तब तक उनकी उम्र दत्तक ग्रहण कानून के मुताबिक गोद लेने लायक नहीं रह जाती। भारत में यदि दंपति की उम्र मिलाकर 90 वर्ष से ज्यादा हो जाय तो उन्हें बच्चा गोद नहीं दिया जा सकता है। देश में दत्तक ग्रहण कानून भी इतना लंबा खिंचने वाला है कि लोग इससे दूर भागने लगे हैं। कानूनी प्रक्रिया पूरी होने में आम तौर पर साल भर से भी ज्यादा समय लग जाता है। इसकी वजह से बच्चा गोद देने का काला धंधा तेजी से फलने–फूलने लगा है। नर्सिंग होम और अस्पतालों से सीधे बच्चा गोद देने का कारोबार बढ़ रहा है जो न तो पकड़ में आते हैं और न ही रिकॉर्ड में। इसके अलावा गरीब मां–बाप द्वारा अपने बच्चों को बेचने के भी मामले बड़ी संख्या में सामने आते हैं जिसका फायदा लोग उठा लेते हैं। धोखाधड़ी का एक मामला 2010 में पुणे में सामने आया था जहां अनाथालय चलाने वाले एक व्यक्ति ने एक दंपति को एचआईवी पॉजिटीव बच्चा एक लाख में बेच दिया था। जब बच्चे की मौत हो गई और दंपति को पता चला कि बच्चा पहले से ही एचआईवी पॉजिटीव था तो उन्होंने आश्रम चलाने वाले व्यक्ति के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई और वह पकड़ा गया। उसी साल पुणे का सबसे बड़ा अनाथ आश्रम चलाने वाले जोगिन्दर सिंह भसीन को भी पुलिस ने गिरफ्तार किया। भसीन पर आरोप था कि वह गरीब मां–बाप की संतानों को खरीद कर अनाथ आश्रम में ले आता था और फिर उन्हें महंगी कीमत पर विदेशियों को बेच दिया करता था। कानूनी तौर पर विदेशी दंपतियों को बच्चा गोद लेने के बदले 5 हजार डॉलर की राशि चुकानी पड़ती है जबकि चोर बाजार में उनसे 20 हजार डॉलर तक ले लिये जाते हैं।

दत्तक ग्रहण की प्रक्रिया में आने वाली परेशानियों और उससे होने वाले नुकसान की ओर केन्द्र सरकार का भी ध्यान गया है और संबंधित कानून में कई बदलाव किये गये हैं। विदेश मंत्रालय ने पासपोर्ट विभाग को साफ–साफ कह दिया है कि केवल जन्म प्रमाणपत्र की ही मांग न करें बल्कि अदालत में तय की गई आयु को भी मान्यता दें। इस आदेश के बाद कई लोगों को राहत मिली है। इसके साथ ही उन्हें यह भी आदेश दिया गया है कि विदेशी दंपति द्वारा गोद ली गई संतानों का पासपोर्ट जल्दी बनाया जाय ताकि वे जल्द से जल्द उन्हें अपने घर ले जा सकें। महिला एवं बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने सुस्ती दिखाने वाले और खराब प्रदर्शन करने वाले एनजीओ को भी बंद करने की चेतावनी दी है और उन्हें अच्छा काम करने के लिए कहा है। हालांकि दूसरी ओर सामाजिक कार्यकर्ता चाहते हैं कि दत्तक ग्रहण के कार्य से जुड़े सभी संगठनों को 'कारा' के अंतर्गत लाया जाय ताकि सभी की पर्याप्त निगरानी की जा सके। इस समय देश भर में केवल 400 एजेंसी ही 'कारा' से जुड़ी हैं। हर अनाथालय को इसके झंडे के नीचे लाना होगा। इसके अलावे उनका कहना है कि 'कारा' हर प्रक्रिया को ऑनलाइन करना चाहती है जो संभव नहीं है क्योंकि बच्चे को गोद लेना कोई मशीनी काम नहीं है बल्कि इसमें लोगों की भावनाएं जुड़ी होती हैं। 'कारा' के इस रवैये से स्वयंसेवी संगठनों में नाराजगी है।

क्या करें

- राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त दत्तक ग्रहण एजेंसियों से ही बच्चा गोद लें।
- 'कारा' की वेबसाइट पर दिये गये दिशा–निर्देशों का पूरी तरह पालन करें।
- रजिस्ट्रेशन पूरा करने के लिए सभी चरणों को पूरा करें।
- जरूरत के मुताबिक कागजातों को अपलोड करें।
- गोद लेने की प्रक्रिया में लगने वाले खर्च की जानकारी के लिए गाइडलाइन गवर्निंग एडॉप्शन ऑफ चिल्ड्रेन, 2015 की अनुसूची 13 को देखें।
- फीस का भुगतान हमेशा चेक या ड्राफ्ट से करें और रसीद लेना न भूलें।

क्या ना करें

- गोद लेने के लिए कभी भी किसी अस्पताल, नर्सिंग होम, गैर अधिकृत एजेंसियों या व्यक्ति से संपर्क न करें।
- गलत कागजातों को अपलोड न करें अन्यथा निबंधन रद्द हो सकता है।
- 'कारा' गाइडलाइन के तहत निर्धारित फीस के अलावा कोई भी अतिरिक्त फीस न दें।
- दलालों या ऐसे किसी व्यक्ति के झांसे में न आएं। गोद लेने के लिए किसी दलाल की जरूरत नहीं होती। वे आपको धोखा दे सकते हैं।
- गैरकानूनी ढंग से बच्चा गोद लेने पर आप भी बच्चों की तस्करी के दोषी हो सकते हैं। इससे बचें।

गुरुकुल

स्कूलों की जवाबदेही बढ़ी, भरोसा घटा

लखनउ के सबसे पुराने स्कूलों में से एक ला मार्टिनियर ब्याएज कॉलेज में कक्षा छह के छात्र विराज कालरा को लंबे बाल रखने के कारण उसके शिक्षक ने चांटा मार दिया। विराज के पिता अमीश ने स्कूल के खिलाफ मोर्चा खोल दिया जिसमें उनका साथ पहले से ही स्कूल को चुनौती दे रहे कुछ अन्य अभिभावकों ने भी दिया। अमीश का कहना है कि उन्होंने प्रिंसिपल के अड़ियल और बुरे बर्ताव के कारण उनके खिलाफ शिकायत की है। अमीश के मुताबिक, प्रिंसिपल ने माफी मांगने के बजाय उन्हें धमकी दी कि उनके बच्चे को स्कूल में होने वाले किसी भी गतिविधि में हिस्सा नहीं लेने दिया जाएगा। प्रिंसिपल के इस रवैये से आहत अमीश ने राज्य के बाल अधिकार संरक्षण आयोग में शिकायत दर्ज कराई जिसने स्कूल प्रबंधन से जवाब मांगा लेकिन स्कूल ने कोई जवाब नहीं दिया। इसी बीच गर्मी की छुट्टियां हो गईं। कई रातों तक बेचैन रहने और मामले में कोई प्रगति नहीं देखकर अमीश ने अपने बच्चे को स्कूल से हटा लेने का फैसला लिया। ये वो स्कूल है जहां अपने बच्चों को पढ़ाने का सपना लखनउ और उसके बाहर के भी माता–पिता देखा करते हैं।

कालरा का मामला स्कूल और पेरेंट के बीच के बदलते रिश्तों को दर्शाता है। अब पेरेंट स्कूल के ब्रांड के नाम पर कुछ भी बर्दाश्त करने को तैयार नहीं हैं बल्कि अब वे उस ग्राहक के तौर पर पेश आते हैं जो पैसा देने के बदले अच्छी सेवा पाने का हक जताते हैं। क्लीनिकल साइकोलॉजिस्ट कृष्णा कुमार दत्त कहती हैं कि उपभोक्तावाद ने शिक्षा को भी प्रभावित किया है। अभिभावक शिक्षा के खरीदार के रूप में सामने आ रहे हैं। उनके मन में स्कूल के लिए वो सम्मान नहीं रह गया है जो पहले हुआ करता था। मीडिया भी स्कूलों की गलत छवि पेश करने का काम कर रहा है। महानगर गर्ल्स स्कूल की प्राचार्या श्रुति सिंह कहती हैं कि आज के पेरेंट स्कूलों से अप्राकृतिक उम्मीदें करने लगे हैं। कोई स्कूल ये कैसे जान सकता है बच्चे ने घर में दूध पीया है या नहीं अथवा उसने घर में कितनी देर टीवी देखा है। बाल अधिकारों के प्रति पेरेंट में बढ़ती जागरूकता के कारण भी स्कूलों और अभिभावकों के रिश्तों में बदलाव आया है। इसके अलावा संयुक्त परिवारों के टूटने के बाद पेरेंट चाहते हैं कि स्कूल ही उनके लिए परिवार के सदस्यों का काम करे।

हालांकि इन सब बदलावों को नकारात्मक नहीं कहा जा सकता है। जैसा कि एक सर्वे 'प्राइवेट स्कूलिंग इन इंडिया : ए न्यू एजुकेशनल लैंडस्केप, 2008–इंडिया ह्यूमेन डेवलपमेंट सर्वे' में भी कहा गया है कि मिडिल क्लास गैर सरकारी स्कूलों पर पेरेंट की बढ़ती निर्भरता ने स्कूल और शिक्षकों की जवाबदेही को बढ़ाया है और इससे स्कूलों में माहौल बदला है। कुछ हद तक यही स्थिति सरकारी स्कूलों में भी है जहां अभिभावक अपना विरोध दिखाने लगे हैं। जैसा कि जुलाई, 2015 को हुआ जब लखनउ के सरकारी प्राथमिक विद्यालय में मिड डे मील का दूध पीने के बाद 50 बच्चे बीमार पड़ गये तो नाराज अभिभावकों ने स्कूल में तोड़–फोड़ मचा दी थी।

शहर के कई स्कूलों में काउंसिलर का काम कर चुकीं शामा एन बताती हैं कि बच्चों की सुरक्षा के प्रति अतिचिंतित अभिभावकों की ओर से शिकायतों का आना बढ़ गया है। चूंकि वे खुद अपने बच्चों के साथ काफी कम समय व्यतीत करते हैं इसलिए बच्चे में थोड़ा सा बदलाव देखने पर भी चिंतित और अतिप्रतिक्रियावादी हो जाते हैं। शोमा कहती हैं कि बच्चे भी जोड़–तोड़ करने में माहिर होते हैं। वे जानते हैं कि क्या करना है जिससे माता–पिता की 'ना' 'हां' में बदल जाएगी और वे ऐसा ही बर्ताव करने लगते हैं। यहां पर मां–बाप को समझना होगा कि बच्चे की 'सीमा' कहां तक है और उसे पार करने की इजाजत नहीं होनी चाहिए। वे बताती हैं कि एक बार एक हाइपरएक्टिव बच्चे का मामला उनके सामने आया जब बच्चे के मां–बाप ने शिकायत की कि उनके बच्चे का रिजल्ट लगातार खराब होता जा रहा है। शिक्षकों ने बताया कि उनका बच्चा क्लास में बुरा बर्ताव करता है। शोमा कहती हैं कि मामले की तह तक जाने के बाद उन्हें पता लगा कि बच्चे की मां घर में एक आज्ञाकारी मां की तरह पेश आती हैं जो बच्चे को उन्हें मारने तक की इजाजत दे सकती है। घर में ऐसा माहौल पाने वाला बच्चा अपने बर्ताव को सामान्य मानने लगता है और समझता है कि ऐसा व्यवहार घर से बाहर भी किया जा सकता है। वे कहती हैं कि ऐसे मामलों को बेहद संजीदगी से सुलझाने की जरूरत है।

पूजा अवस्थी

(पेशे से पत्रकार हैं और कई अखबारों व पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखती हैं। वर्ष 2006 में इन्हें शेवनिंग फेलोशिप से नवाजा गया जबकि वर्ष 2012 में लाडली मीडिया अवार्ड के लिए इन्हें नामांकित किया गया।)

गुरुकुल

कुल मिलाकर ये कहा जा सकता है कि स्कूल और पेरेंट्स के बीच विश्वास लगातार कम होता जा रहा है। इसे सुधारने में राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग की अध्यक्ष जूही सिंह लगातार प्रयास कर रही हैं। इसके लिए पब्लिक स्कूलों को ज्यादा जिम्मेदार और पारदर्शी बनाया जा रहा है। उन्हें अपनी फीस संरचना को सार्वजनिक करने, आठवीं तक के बच्चों को फेल नहीं करने तथा शारीरिक दंड बंद करने को कहा गया है। कालरा मामले में वे कहती हैं कि बड़े घरों के बच्चे जो बड़े स्कूलों में पढ़ते हैं, अक्सर हमारे सुझावों को मानने से इंकार कर देते हैं। कालरा मामले में हम दोनों पक्षों को अपनी बात रखने का समान मौका देना चाहते थे लेकिन स्कूल ने अपना पक्ष नहीं रखा।

प्राइवेट स्कूल अपनी फीस और छिपे हुए खर्चों को लेकर हमेशा विवादों में रहते हैं लेकिन फिर भी पेरेंट अपने बच्चों को उसी में पढ़ाना चाहते हैं क्योंकि उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से अधिक स्कूल के बड़े नाम और सुविधाओं से मतलब होता है। 2011 में विप्रो और एजुकेशनल इनीशिएटिव द्वारा किये गये 'क्वालिटी एजुकेशन स्टडी' में पाया गया कि देश के 89 बड़े स्कूलों के बच्चे स्कूल की अपनी पढ़ाई पर भरोसा रखते हैं लेकिन उनमें नागरिक जिम्मेदारी, विविधताओं अथवा लैंगिक समानता जैसे विषयों पर बेहद कम संवेदनशीलता है। लखनउ के मिलेनियम स्कूल की प्रिंसिपल मंजुला गोस्वामी इस बात से इंकार करती हैं कि आज के दौर में पेरेंट को धमका कर बेवकूफ बनाया जा सकता है। उनका कहना है कि जो मां–बाप केवल स्कूल का नाम देखकर बच्चे का दाखिला करवाते हैं और बदले में परेशानी ही पाते हैं उन्हें एक बार अपने फैसले पर सोचना चाहिए। पेशे से पत्रकार कुलसुम ताल्हा एक सिंगल मदर थीं और उन्होंने अपने बेटे का दाखिला शहर के एक अन्य प्रतिष्ठित स्कूल सेंट फ्रांसिस कॉलेज में करवाया था। वह अपने स्कूल की क्रिकेट टीम का कप्तान भी था। जब बारहवीं की परीक्षा पास आई तो स्कूल ने उनके बेटे को दो अन्य छात्रों के साथ परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी क्योंकि उनकी हाजिरी 60 फीसद से कम थी। प्रैक्टिकल परीक्षा के महज तीन दिन पहले उसे इस बारे में बताया गया। कुलसुम ने तुरंत हाई कोर्ट का दरवाजा खटखटाया जहां से उन्हें अंतरिम राहत मिली और बेटे को परीक्षा देने की अनुमति मिल गई। स्कूल ने इस फैसले को चुनौती दी जिसके बाद लखनउ पीठ ने फैसले को बहाल रखा तो मामला सुप्रीम कोर्ट तक पहुंच गया। वहां भी कुलसुम को जीत मिली। उनकी अपील पर क्लास की हाजिरी रजिस्टर को अदालत में लाया गया जिसमें पाया गया कि उनके बेटे को केवल उन्हीं दिनों में अनुपस्थित दिखाया गया था जब वो स्कूल की तरफ से क्रिकेट खेल रहा था! कोर्ट के फैसले से बौखलाए स्कूल ने बच्चे का रिजल्ट रोककर रखा ताकि वो किसी कॉलेज में दाखिला न ले सके। अंतत : कुलसुम को भारी फीस देकर मैनेजमेंट कोटे से बेटे का दाखिला पुणे के एक कॉलेज में करवाना पड़ा। कुलसुम ने बताया कि पूरी घटना से उन्हें मानसिक तनाव झेलना पड़ा, काम छोड़ना पड़ा और उनके बेटे का आत्मविश्वास टूट गया। वे पूछती हैं कि आखिर स्कूल की निगरानी कौन करेगा कि बच्चे वहां क्या कर रहे हैं। जब परीक्षा में छात्रों के बैठने या न बैठने का फैसला चार दिन पहले होता है तो फिर परीक्षा की फीस छह महीने पहले ही क्यों ले ली जाती है।

उपभोक्तावाद ने शिक्षा को भी प्रभावित किया है। अभिभावक शिक्षा के खरीदार के रूप में सामने आ रहे हैं। उनके मन में स्कूल के लिए वो सम्मान नहीं रह गया है जो पहले हुआ करता था। मीडिया भी स्कूलों की गलत छवि पेश करने का काम कर रहा है।

एक दूसरा मामला लेते हैं। नलिनी शरद शहर के मशहूर सिटी मोंटेसरी स्कूल की प्रिंसिपल रह चुकी हैं। 2011 में उनके कार्यकाल के दौरान 9वीं कक्षा के एक छात्र ने आत्महत्या कर ली। छात्र के अभिभावकों ने आरोप लगाया कि उनके बेटे को प्रिंसिपल ने डांटा और उसे अपनी पैंट उतारने के लिए मजबूर किया जिससे आहत होकर उसने आत्महत्या कर ली। अभिभावकों ने नलिनी के खिलाफ मामला दर्ज कराया और जो आज तक कोर्ट में है जबकि नलिनी रिटायर हो चुकी हैं। हालांकि पुलिस की जांच में उन्हें क्लीन चिट दी जा चुकी है लेकिन कोर्ट ने उस रिपोर्ट को मानने से इंकार कर दिया है। कुछ मीडिया रिपोर्टों में भी यह बताया गया कि रिजल्ट खराब होने की वजह से बच्चा तनाव में था और पिता की डांट से बचने के लिए उसने जान दे दी। इंडिपेंडेंट स्कूल फेडरेशन ऑफ इंडिया के उपाध्यक्ष मधुसूदन दीक्षित स्कूल और गार्जियन के बीच बढ़ती संवादहीनता की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि फेडरेशन इस दूरी को कम करने की भरसक कोशिश कर रहा है। हालांकि इसमें उन्हें स्कूल और पेरेंट दोनों की तरफ से पर्याप्त मदद नहीं मिल पाती है। वे कहते हैं कि स्कूल हमारे पास तभी आते हैं जब वे सरकार या किसी विभाग की ओर से परेशानी झेलते हैं जैसे कि पानी या बिजली जैसी समस्या तो दूसरी ओर अभिभावक स्कूलों में होने वाली बैठकों में भाग नहीं लेते लेकिन जैसे ही उनका बच्चा किसी मुसीबत में फंसता है तो वे हम पर दखल देने का दवाब डालने लगते हैं। शिक्षकों को केवल उनकी तनख्वाह से मतलब होता है। ये मानसिकता उनके बीच संवाद करने की संभावनाओं को खत्म कर देती है।

विशेषज्ञ

अपनी जिम्मेदारी से न भागें मां–बाप

वो 13 साल की बच्ची क्या जानती थी इस दुनिया के बारे में। रिश्तों को उसने मम्मी, पापा और भाई में ही समझा था जो विश्वास और प्रेम से भरे थे। इसलिए फेसबुक पर जब उसे एक 'दोस्त' मिला तो वह भी उसे उन्हीं रिश्तों जैसा लगा। दोस्ती परवान चढ़ी और 'दोस्त' ने उसे मिलने के लिए बुलाया। खुशी से झूमती वह बच्ची अपने 'दोस्त' से मिलने गई लेकिन जब लौटी तो .....!

हमारे आस–पास की ही कहानी है यह और अगर हम नहीं चेते तो हमारे घर की भी हो सकती है। वह बच्ची कभी सामने तो कभी छिपकर फेसबुक पर चैट किया करती थी। मम्मी ने देख लिया तो डांट दिया वरना कोई बात नहीं। उन्होंने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि उनकी बेटी किसके साथ चैट कर रही है। उसका वो तथाकथित दोस्त कौन है। और नतीजा सबके सामने है। सोशल मीडिया अपने आप में बुरा नहीं है लेकिन जब बच्चे उसका इस्तेमाल कर रहे हों तो सचेत और सतर्क रहना मां–बाप की जिम्मेदारी है।

डॉ. बिंदा सिंह

प्रसिद्ध क्लीनिकल साइकोलॉजिस्ट, बिहार

पटना की ख्यात क्लीनिकल साइकालॉजिस्ट डॉ. बिंदा सिंह बताती हैं कि वर्चुअल फ्रेंडशिप के दौर में सभी को सावधान रहना जरूरी है। चाहे वो कोई बच्चा हो या वयस्क। क्योंकि इंसान का ये स्वभाव होता है कि वह गलत चीजों की ओर जल्दी आकर्षित होता है और अच्छी बातों की अनदेखी करता जाता है। फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप जैसे सोशल मीडिया पर फर्जी नाम से आकर्षक अकाउंट बनाने वाले लोगों की कमी नहीं है जो मासूम लोगों को 'दोस्त' बनाकर उनके साथ खिलवाड़ करते हैं। डॉ. बिंदा कहती हैं कि अभिभावकों को न तो बहुत ज्यादा सख्ती से और न ही अत्यधिक ढिलाई से पेश आना चाहिए। उन्हें अपने बच्चों के साथ दोस्त की तरह रहने और अपने साथ हर बात साझा करने की उनमें आदत डालनी चाहिए। मां–बाप को बच्चों के साथ भावनात्मक संबंध विकसित करना चाहिए ताकि वे उनसे डर कर या शरमा कर कोई बात छिपा न सकें। इसके अलावा एक बात जो महत्वपूर्ण है वो यह कि बच्चों का कम्प्यूटर कॉमन रूम या हॉल में रहना चाहिए जिससे वे जो करें सबके सामने करें। प्राइवेसी के नाम पर बच्चों में गलत आदत न पड़े इसका ध्यान रखना चाहिए। साथ ही छोटी उम्र में बच्चों को स्मार्ट फोन देने से भी बचना चाहिए। डॉक्टर कहती हैं कि लगातार सोशल मीडिया में रहने वाले किशोरवय बच्चे अक्सर पहचान की संकट से गुजरने लगते हैं। वर्चुअल रिश्तों में रहते–रहते वे अपने वास्तविक रिश्तों को ही बिगाड़ने लगते हैं जिन्हें संभालना बहुत मुश्किल होता है।

इसी तरह टीवी पर बच्चे क्या देख रहे हैं यह देखना भी मां–बाप का ही काम है। छोटे या किशोर उम्र के बच्चों के साथ बैठकर टीवी देखने से पहले ये जान लें कि दिखाए जाने वाले धारावाहिक या फिल्म कैसी है। केवल अपने मनोरंजन के लिए उनका भविष्य खराब करने से बचना चाहिए। हिंसक, डरावनी और सेक्स आधारित फिल्में या कार्यक्रम बच्चों के साथ न देखें और न ही उन्हें देखने दें। डॉ. बिंदा सिंह कहती हैं कि बच्चे एक्सपेरिमेंटल स्वभाव के होते हैं। वे जो देखते हैं उसे खुद करने की कोशिश करते हैं। कई बार छोटे बच्चों को व्यस्त रखने के लिए हम कार्टून चैनल लगा देते हैं और खुद काम में लग जाते हैं। लेकिन हमें देखना होगा कि उक्त कार्टून की भाषा कैसी है और उसके चरित्र क्या सिखा रहे हैं। कोशिश करनी चाहिए कि बच्चे के साथ हम खुद भी बैठकर कार्टून देखें ताकि उसके अच्छे–बुरे प्रभाव को जान सकें। साथ ही बच्चों के टीवी देखने का समय भी तय करना चाहिए। ज्यादा टीवी देखने वाले बच्चे ज्यादा खाने की समस्या से ग्रस्त हो जाते हैं और उनमें शारीरिक कार्य करने की क्षमता घट जाती है। वे दौड़ने या आउटडोर गेम खेलने से कतराने लगते हैं जो उनकी सेहत के लिए ठीक नहीं है।

किशोरावस्था को जीवन का सबसे नाजुक और संवेदनशील हिस्सा मानते हुए डॉ. बिंदा कहती हैं कि इस उम्र के बच्चों की समस्याओं की ओर सभी को ध्यान देना होगा। परिवार से लेकर सरकार तक को इस उम्र की जरूरतों और मनोभावों को समझना होगा। वे कहती हैं कि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे–बच्चियों अथवा झुग्गियों और स्लम में रहने वाले बच्चों को उनकी उम्र के मुताबिक सभी प्रकार की बातों की सही जानकारी देना बहुत जरूरी है। निजी स्कूल तो अपने स्तर से किशोर छात्र–छात्राओं की काउंसिलिंग कराते हैं लेकिन सरकारी स्कूलों में कोई काम नहीं हा रहा। वहां भी बच्चों को सेक्स, मासिक चक्र और अपने शरीर से जुड़ी अन्य बातों के बारे में बताना चाहिए। इसके लिए किसी प्रोफेशनल काउंसिलर की मदद लेनी चाहिए और विशेषकर लड़कियों के स्कूल में महिला काउंसिलर को ही जाना चाहिए। साथ ही घर में मां–बाप यदि अपने बच्चों को इन चीजों के बारे में बताएं तो बच्चे गुमराह होने से बच जाते हैं। वे बताती हैं कि किशोर उम्र के बच्चे कई तरह की भ्रांतियों में पड़कर गलत रास्ते पर चल देते हैं जो अंततः उनके लिए घातक सिद्ध होता है। गुप्त रोगों के इलाज के नाम पर पैसे वसूलने वाले झोलाछाप डॉक्टर ऐसे बच्चों का गलत फायदा उठाते हैं।

डॉ. बिंदा सुरक्षित और खुशहाल बचपन के लिए स्कूलों की भूमिका को बेहद महत्वपूर्ण मानती हैं। हर बच्चा आत्मविश्वास से पूर्ण हो इसके लिए जरूरी है कि हर बच्चे को मौका मिले। स्कूलों में शिक्षक इसमें महती भूमिका निभा सकते हैं। केवल कुछ ही बच्चों को तरजीह न देकर उन्हें हरेक बच्चे की प्रतिभा को समझने और उसे सामने लाने की कोशिश करनी चाहिए। इसके अलावा स्कूलों में सेक्स एजुकेशन और नैतिक मूल्यों दोनों की शिक्षा दी जानी चाहिए तभी हम कामयाब कल की उम्मीद कर सकेंगे।

बाजार में बिकता बचपन

पिछले साल एक खबर आई जिसमें कहा गया था कि एक व्यक्ति ने झारखंड के सुदूर इलाकों में रहने वाले 5 हजार आदिवासी बच्चों की तस्करी की। पिछले साल ही सीबीआई ने एक ऐसे रैकेट को पकड़ा था जो 8 हजार महिलाओं और बच्चों की तस्करी कर उन्हें दुबई भेज चुका था और वो भी सरकार की नाक के नीचे यानी राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से। मानव तस्करी किसी भी इंसान के विरुद्ध किये जाने वाले सबसे घृणित अपराधों में है। जीते–जागते इंसान का किसी वस्तु की तरह खरीद–फरोख्त कर उसका इस्तेमाल करना शर्मनाक है। परंतु दुर्भाग्यवश हमारा देश इस अपराध को न केवल झेल रहा है बल्कि सबकुछ जानते–समझते हुए भी आंखें बंद कर उसका सहभागी बन रहा है। न सरकार चेतती है, न लोग।

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो कहता है कि 2009 से लेकर 2013 के बीच देश में मानव तस्करी की की वारदातों में 38.3 फीसद तक बढ़ोतरी हुई। 2009 में जहां तस्करी के 2848 मामले आए वहीं 2013 में यह संख्या 3940 हो गई। दूसरी ओर इसके मुकाबले सजा पाने की दर में 45 फीसद की कमी आई और यह 1279 से घटकर 702 हो गई। यानी समस्या समाप्त होने की बजाय और गहराती चली गई। वर्ष 2014 की अमेरिका की 'ट्रैफिकिंग इन पर्सन्स रिपोर्ट' में भारत को उन देशों में रखा गया है जो मानव तस्करी का श्रोत और पहुंच स्थल दोनों है। यहां सबसे ज्यादा तस्करी महिलाओं और छोटी बच्चियों की होती है। रिपोर्ट के मुताबिक पूरी दुनिया में 20 मिलियन लोग किसी न किसी प्रकार से तस्करी का शिकार हो रहे हैं।

देश–विदेश में है बड़ा कारोबार

बच्चों की तस्करी पूरी दुनिया में बड़ी कमाई का जरिया है तो पुलिस के लिए सबसे मुश्किल टास्क भी। भारत में 90 फीसद मानव तस्करी देश की सीमा के भीतर ही होती है जबकि केवल 10 फीसद लोग देश के बाहर भेज दिये जाते हैं फिर भी लापता लोगों का पता लगा पाना पुलिस–प्रशासन के लिए टेढ़ी खीर होती है। महिलाओं और छोटी बच्चियों को ज्यादातर नेपाल और बांग्लादेश भेजा जाता है जहां उन्हें यौन कारोबार में लगा दिया जाता है। 9–14 साल की गरीब बच्चियों का बाजार देश के कोलकाता, मुंबई और दिल्ली में भी खुलेआम लगाया जाता है। बच्चियों के साथ–साथ बड़ी संख्या में किशोर और छोटे उम्र के

लापता बच्चा कौन

- वर्ष से कम उम्र का हो
- जिसके घर का या रहने के ठिकाने का पता न हो
- जिसके माता–पिता या परिजन का पता न हो

कौन करे शिकायत

- माता–पिता, रिश्तेदार या कोई भी परिजन
- सीडब्ल्यूसी, चाइल्ड लाइन, एनजीओ
- पुलिस या सरकारी कर्मचारी
- कोई भी आम आदमी

कहां करें शिकायत

- पुलिस स्टेशन, पीसीआर में या 10 डायल करें
- पुलिस की हेल्पलाइन में
- चाइल्डलाइन 1098 में
- वेबसाइट www.trackthemissingchild.gov.in

कैसे करें शिकायत

- लिखित शिकायत, फोन, ई–मेल या एसएमएस के जरिये

कहां पहुंचेगी बात

- पीसीआर, जीआरपी आपीए, एसजेपीओ, एएचटीओ, एससीआरबी और एनएसआरबी तक प्रचारित की जाएगी बच्चा खोने की बात

लड़कों को भी तस्करी का शिकार होता पड़ता है। मध्य–पूर्व के देशों और दुबई में उंट दौड़ के लिए गरीब लड़कों को भेजा जाता है। इस अमानवीय खेल में उंट की पीठ पर छोटे बच्चों को बांधकर उंटों को दौड़ाया जाता है। बच्चे रोते हैं तो वहां मौजूद रईसों का मनोरंजन होता है। इस दौरान कई बच्चों को गंभीर चोट आती है तो कई की मौत भी हो जाती है। इसके अलावा सेक्स कारोबार और बंधुआ मजदूरी के लिए भी भारतीय बच्चों की इन देशों में तस्करी की जाती है। इतना ही नहीं हज के दौरान भिक्षावृत्ति के लिए सउदी अरब में बच्चों की बड़ी मांग होती है और उस समय भारत से बच्चों की तस्करी की खबरें आती रहती हैं। एक अनुमान के मुताबिक करीब डेढ़ हजार बच्चे हर साल सउदी भेजे जाते हैं। बच्चों के मामले को लेकर सरकार कितनी गंभीर है इसका अंदाजा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की एक रिपोर्ट से लगाया जा सकता है जिसके मुताबिक देश में हर साल 40 हजार बच्चों के लापता होने का मामला दर्ज कराया जाता है जिसमें से 11 हजार बच्चों का कोई पता नहीं चल पाता है। स्वयंसेवी संस्थाओं के अनुमान के मुताबिक, देश में हर साल 12 हजार से लेकर 50 हजार तक महिलाएं और बच्चे केवल सेक्स कारोबार के लिए खरीदे और बेचे जाते हैं। इसकी पुष्टि इस आंकड़े से होती है कि देश में वेश्यावृत्ति के धंधे में 40 फीसद बच्चे हैं। भारत में वेश्यावृत्ति में लिप्त 16 साल से कम उम्र की 2 लाख बच्चियां नेपाल की हैं। आंकड़ों के मुताबिक, राजस्थान, असम, मेघालय, बिहार, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में बच्चियों और महिलाओं की खरीद–बिक्री ज्यादा की जाती है। दिल्ली और गोवा में इनकी मांग अधिक है।

कहां खड़ा है बिहार

बिहार के सीमावर्ती जिलों में बच्चों के लापता होने के आंकड़े विस्फोटक हैं। नेपाल और बांग्लादेश से बड़ी संख्या में बच्चों को लाया जाता है और उन्हें बिहार के सीमावर्ती जिलों में रखा जाता है और बहुधा यौन अपराधों में भी शामिल कर लिया जाता है जिनमें 14–18 वर्ष की लड़कियों की संख्या ज्यादा है। किशनगंज में तस्करी के सबसे ज्यादा मामले दर्ज किये जाते हैं। यहां आदिवासियों की संख्या ज्यादा है जिसके कारण गरीबी और अशिक्षा के आंकड़े भी ज्यादा हैं। चूंकि आदिवासियों में पुरुषों के काम करने की दर कम होती है इसलिए महिलाओं को घर चलाने के लिए कमाना पड़ता है। काम पाने की लालच में वे कई बार गलत लोगों की साजिश का शिकार हो जाती हैं और मानव तस्करों के हाथ में पड़ जाती हैं। कमोबेश यही स्थिति बिहार के सभी

पलायन के आंकड़े

मधुबनी	17.06 %
सीतामढ़ी	8.9 %
पूर्वी चम्पारण	7.63 %
सिद्धार्थनगर	6.9 %
सुपौल	6.67 %
पीलीभीत	6.30 %
प. चंपारण	6.13 %
बलरामपुर	6.06 %
अररिया	6.02 %
महाराजगंज	5.63 %
किशनगंज	5.43 %

सुप्रीम कोर्ट ने अपने आदेश में उन सभी तथ्यों को रेखांकित किया है जो किसी लापता बच्चे की तलाश की दिशा में सहायक हो सकते हैं।

- कोर्ट ने साफ कहा है कि बच्चे के लापता होने से संबंधित कोई भी शिकायत यदि थाने में आती है तो उसकी एफआईआर दर्ज की जानी चाहिए और आगे की कार्रवाई की जानी चाहिए।
- हर लापता बच्चे के मामले की अपहरण या तस्करी के लिहाज से पड़ताल की जानी चाहिए।
- लापता बच्चे की शिकायत दर्ज होने के बाद उसकी सीआरपीसी की धारा 154 के तहत जांच की जानी चाहिए।
- धारा 155 के तहत दर्ज मामले की जानकारी मिलने के बाद मजिस्ट्रेट को गंभीरता के साथ उपधाराओं के तहत काम करना चाहिए। विशेषकर बच्चे के मामले में और उसमें भी खासकर बच्ची के मामले में।
- हर पुलिस थाने में कम से कम एक अधिकारी को जुवेनाइल वेलफेयर ऑफिसर के तौर पर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। जुवेनाइल वेलफेयर ऑफिसर को पुलिस थाने में शिफ्ट के अनुसार मौजूद रहना चाहिए।
- हर पुलिस थाने में पाराविधि कार्यकर्ताओं की तैनाती होनी चाहिए। उसका काम थाने में बच्चों के मामले दर्ज होने के समय पुलिस अधिकारियों के रवैये पर नजर रखना होगा।
- राज्य कानूनी सेवा प्रदान करने वाली संस्थाओं को स्वयंसेवी संस्थाओं का ऐसा नेटवर्क तैयार करना चाहिए जिनका इस्तेमाल लापता बच्चों की तलाश और उनके पुनर्वास के लिए किया जा सके।
- लापता बच्चे के बरामद होने के तुरंत बाद पुलिस को उसकी तस्वीर लेनी चाहिए ताकि उसे स्थानीय समाचारपत्रों या चैनलों पर जारी करवाया जा सके और बच्चे के परिजनों को बताया जा सके।
- बच्चे की फोटोग्राफ को वेबसाइट पर डाला जाना चाहिए। साथ ही उसे समाचार पत्रों और टीवी चैनलों पर दिखाया जाना चाहिए।
- लापता बच्चों की तलाश के लिए एक मानक सिस्टम को अपनाया जाना चाहिए और यदि मामला अपहरण, तस्करी, बाल मजदूरी या शोषण का हो तो कानून की उचित धारा का इस्तेमाल होना चाहिए ताकि दोषियों को समुचित दंड दिया जा सके।

बाल तस्करी

सीमावर्ती जिलों की है। बांग्लादेश और नेपाल की सीमा से लगे बिहार और उत्तर प्रदेश के जिलों से पलायन को आंकड़ों के जरिये जाना जा सकता है।

बिहार के साथ एक बड़ी विडंबना है कि इसकी सीमाएं उन राज्यों व देश की जुड़ती हैं जहां बच्चों की तस्करी के आंकड़े सबसे ज्यादा हैं। राज्य के उत्तर में नेपाल, पूर्व में पश्चिम बंगाल, दक्षिण में झारखंड और पश्चिम में उत्तर प्रदेश की सीमाएं हैं। नेपाल में बाल तस्करी और खासकर लड़कियों की तस्करी के मामले बहुत ज्यादा प्रकाश में आते हैं। नेपाल के जरिये संगठित गिरोह राज्य के सीमाव. र्ती जिलों में बच्चों को भेजते हैं जहां से उन्हें देश के विभिन्न हिस्सों में भेज दिया जाता है। इसमें रेलवे मत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी तरह उत्तर प्रदेश में लापता बच्चों की सर्वाधिक संख्या है। पश्चिम बंगाल लड़कियों की आपूर्ति का एक बड़ा क्षेत्र है तो झारखंड आर्थिक रूप से पिछड़ा है और यहां के आदिवासियों की पूरे देश में घरेलू नौकरों के तौर पर सप्लाई का धंधा चलता है। राज्य में बच्चों का अपहरण कर उनका इस्तेमाल कुरियर के रूप में भी किया जाता है। बच्चों के जरिये ड्रग्स या हथियारों की तस्करी करना आसान होता है। ऐसे में बड़ी संख्या में ऐसे गिरोह सक्रिय हो गये हैं जो बच्चों का अपहरण कर उन्हें तस्कर गिरोहों के हवाले कर देते हैं।

इसी तरह मानव अंगों के लिए बच्चों को अगवा कर लेने के मामले सामने आ रहे हैं। मानव अंगों का बड़ा अंतरराष्ट्रीय बाजार है। आम तौर पर मानव अंगों की कीमत बहुत ज्यादा होती है ऐसे में बच्चे अंगों को प्राप्त करने का आसान जरिया होते हैं। बिहार के कुछ नक्सल प्रभावित इलाकों तथा झारखंड में बच्चों को अगवा कर उनकी तस्करी करने का एक बड़ा कारण उन्हें जबरन नक्सल कैंप में शामिल करना भी है। आए दिन ऐसी खबरें आती हैं जिनमें बच्चों द्वारा हथियार उठाने की बात कही जाती है।

- स्थानीय पुलिस को उच्च न्यायालयों के साथ मिलकर एक प्रोटोकॉल का निर्माण करना चाहिए।
- लापता बच्चे की परिभाषा : 18 साल से कम उम्र का व्यक्ति जिसके घर या ठिकाने का पता न हो और जिसका कोई अभिभावक न हो।
- बच्चे की गुमशुदगी की एफआईआर दर्ज होने के चार महीने बाद तक यदि बच्चे की बरामदगी नहीं की जा सके तो मामले को राज्य की मानव तस्करी निरोधी इकाई को प्रेषित कर देना चाएि ताकि बच्चे को बरामद करने के लिए और गंभीरता से छानबीन की जा सके।
- मानव तस्करी निरोधी इकाई हर तीन महीने पर अपनी स्थिति रिपोर्ट विधिक सेवा प्रदाता संस्थाओं को सौंपेगी।
- वैसे मामले जिनमें एफआईआर दर्ज नहीं जा सकी है, मानव तस्करी निरोधी इकाई को सौंपे जाने के एक महीने के बाद एफआईआर दर्ज हो जानी चाएि।
- बच्चे के बरामद हो जाने के बाद भी पुलिस अपनी छानबीन जारी रखेगी और ये पता लगाएगी कि इसके पीछे किसी संगठित गिरो का हाथ तो नहीं था।
- बच्चे के बरामद होने के बाद यदि उसका कोई घर या ठिकाना नहीं मिलता है तो राज्य अधिकारियों की जिम्मेदारी है कि वे उसके लिए उचित आश्रय स्थल की व्यवस्था करें। राज्य सरकार को ऐसे स्थलों के रख–रखाव के लिए समय पर फंड की व्यवस्था करनी चाहिए।

(2012 में बचपन बचाओ आंदोलन की याचिका पर सुनवाई के बाद अदालत द्वारा जारी दिशा–निर्देश।)

वर्ष 2012 के बाद से देश में बाल तस्करी की वारदातों में अत्यधिक बढ़ोतरी देखी गई है। इसे रोकने की तमाम कोशिशों के बाद भी आंकड़ों में आई तेजी ने सरकार और आम जनता दोनों को अपनी भूमिका पर फिर से विचार करने को विवश कर दिया है। गृह मंत्रालय के सूत्रों के मुताबिक, 2012 में जहां देश में 991 बच्चे तस्करी के शिकार हुए वहीं 2014 में इनकी संख्या बढ़कर 2204 तक पहुंच गई। इनमें वैसी बच्चियां भी शामिल हैं जिन्हें तस्करी के जरिये दूसरे देशों से भारत लाया गया। तस्करी में पश्चिम बंगाल और असम के बाद बिहार तीसरे स्थान पर है और यहां 2014 में 285 बच्चों को तस्करी का शिकार बनाया गया।

बाल विवाह

उम्र छोटी, बोझ बड़ा

15 वर्ष से कम उम्र की बच्चियों के मां बनने पर उनकी मौत का खतरा पांच गुना ज्यादा बढ़ जाता है।

देश में 47 फीसद लड़कियों की शादी 18 वर्ष से पहले कर दी जाती है तो बिहार में 60 फीसद की।

पटना के फुलवारीशरीफ इलाके के कुरकुरी गांव की बुना देवी की उम्र 18 साल है और वो पांच और तीन साल के दो बच्चों की मां है। उसकी शादी 13 साल की उम्र में बैजनाथ महतो के साथ हो गई थी। आज बुना पढ़ना चाहती है लेकिन उसके पति उसके साथ मारपीट करते हैं और पढ़ने से मना करते हैं। बुना के पड़ोसी भी कहते हैं कि अब इस उम्र में पढ़ना शोभा नहीं देता।

हमारे देश में 12–13 साल के बच्चों की शादी कर देना कोई बड़ी बात नहीं हैं बल्कि कहें कि गौर करने लायक भी नहीं मानी जाती है। अपनी आंखों के सामने किसी के बालपन का दम घोंटते समय हम उसे परंपरा और रिवाज के नाम पर स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे में हमें यह जानकर चौंकना नहीं चाहिए कि दुनिया भर में सबसे ज्यादा बच्चों की शादी भारत में होती है। इसमें भी बिहार की पहचान उस राज्य के रूप में है जहां के बच्चे सबसे अधिक संख्या में बाल विवाह की भेंट चढ़ जाते हैं। 2012 में संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में ये कहा गया कि भारत सरकार की बालिका शिक्षा एवं अन्य योजनाओं का बहुत ज्यादा प्रभाव बिहार पर नहीं पड़ रहा है। यहां अभी भी बच्चों की शादी के लिए मां–बाप उनके वयस्क होने का इंतजार नहीं करते और करीब 60 फीसद शादियां उनके 18 और 21 वर्ष के होने से पहले ही कर दी जाती हैं। पूरे भारत में इसका प्रतिशत करीब 47 फीसद है। इस लिहाज से बिहार की हालत बहुत खराब है। लड़कियों के प्रति भेदभाव के लिए जाना जाने वाला राजस्थान भी बिहार से पीछे है। यूनाइटेड नेशन्स पॉपुलेशन फंड (यूएनएफपीए) की रिपोर्ट में नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे के हवाले से कहा गया कि देश में वर्ष 2000 से 2011 के बीच 47 फीसद लड़कियों की शादी 18 साल से पहले कर दी गई। इन 47 फीसद में से 56 फीसद लड़कियां गांवों से थीं जबकि 30 फीसद शहरों में रहती थीं। इनमें 76 फीसद लड़कियां पढ़ी–लिखी नहीं थीं। 75 फीसद लड़कियां बेहद गरीब परिवारों से थीं तो करीब 16 फीसद धनी परिवारों से ताल्लुक रखती थीं। यूएनएफपीए ने दुनिया के 12 ऐसे देशों को 20 मिलियन डॉलर की मदद देने की घोषणा की है जहां किशोरियों की हालत बहुत ज्यादा खराब है और वे हाशिये पर हैं, और उन देशों में भारत भी शामिल है।

बच्चे किसी देश का भविष्य होते हैं, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन जिसका वर्तमान ही अंधकार में हो, वह भविष्य को कितना उज्ज्वल बना पाएगा, सोचने वाली बात है। यूनिसेफ कहता है कि 15 वर्ष से कम उम्र की बच्चियों के मां बनने पर उनकी मौत का खतरा पांच गुना ज्यादा बढ़ जाता है। इस तरह बाल विवाह बच्चों की जान के साथ सीधा–सीधा खिलवाड़ है। 2011 की जनगणना में इस बात

का साफ उल्लेख है कि देश में हर तीसरी विवाहिता की शादी 18 साल से कम उम्र में हुई थी। इनमें भी 78.5 लाख ब्याहताओं की शादी तब हुई थी जब वे दस वर्ष की भी नहीं हुई थीं। ये शर्मनाक है। छोटी उम्र में ब्याह दिये जाने का दंश जिसे सबसे ज्यादा भोगना पड़ता है वे होती हैं बच्चियां। कम उम्र में शादी हो जाने से न केवल उनकी पढ़ाई रुक जाती है बल्कि वे भविष्य में न तो अच्छी नौकरी कर पाती हैं और न ही उनमें निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो पाता है। एक अध्ययन के मुताबिक, अगर लड़की दस साल तक पढ़ाई कर ले तो उसकी कम उम्र में शादी होने की गुंजाइश छह गुना तक कम हो जाती है। बाल विवाह की शिकार बनी बच्चियां घरेलू हिंसा, उत्पीड़न और एचआईवी की शिकार भी आसानी से बन जाती हैं। 15 से 19 साल की उम्र में शादी कर दी गई करीब 13 फीसद लड़कियों के साथ उनके पति ने यौन हिंसा की जबकि 30–39 साल की 10 फीसद

बाल विवाह

महिलाओं ने इस तरह की हिंसा को झेला। छोटी उम्र में विवाह का ही नतीजा है कि देश में हर छह में से एक लड़की 15 से 19 साल के बीच गर्भधारण कर लेती है। 20 साल से पहले मां बनने वाली लड़कियों में शिशु मृत्यु दर 76 फीसद है जबकि यही दर 20 से 29 साल के बीच मां बनने वाली महिलाओं के मामले में 50 फीसद है।

यूं तो गरीबी बाल विवाह के सबसे प्रमुख कारणों में है लेकिन भारतीयों की पारंपरिक सोच और रीतियां भी लड़कियों को जल्दी से जल्दी ब्याह देने का दवाब बनाती हैं। यही कारण है कि चाहे हिन्दु हो या मुस्लिम, बच्चों को बांध देने की मानसिकता दोनों में एक सी है। लड़कियों को बोझ मानने की सोच और दहेज की बढ़ती मांग लड़कियों को कम उम्र में ही शादी कर देने के लिए मां–बाप को मजबूर करती है। बड़ी उम्र में शादी यानी बड़ा खर्च और ज्यादा दहेज, इस चिंता में पड़े मां–बाप अपनी बेटियों को जल्दी ही ब्याह देना चाहते हैं फिर चाहे लड़का किसी भी उम्र और सोच का क्यों न हो। इसके अलावा लड़कियों की सुरक्षा का खयाल करके भी माता–पिता उनकी शादी जल्दी कर देना चाहते हैं। लड़की पर किसी पुरुष की गलत दृष्टि पड़ जाय उससे पहले उसे ब्याह देना ही अच्छा है, इस सोच को मानने वाले हमारे देश में कम लोग नहीं हैं। बड़े परिवार का बोझ कम हो जाय और लड़की जल्दी से जल्दी अपनी ससुराल चली जाय, ऐसी मानसिकता बाल विवाह को खत्म करने में हमेशा से बाधक रही है। दूसरी ओर जो कानून बाल विवाह को समाप्त करने के लिए बनाए गए हैं, पुलिस और प्रशासन उन्हें लागू करवा पाने में भी विफल ही रही हैं। जाहिर है लोगों को बच्चों की शादी कर खुद बच जाने का पूरा मौका मिल जाता है। जो कार्यक्रम और योजनाएं इस दिशा में बनाई गई हैं उस तक जरूरतमंदों की पहुंच नहीं हो पाती है जिसके कारण वे योजनाएं आज तक अपने लक्ष्य को नहीं पा सकी हैं। एक बड़ा नुकसान जो बाल विवाह से हो रहा है वह है परिवार नियोजन की योजनाओं का सफल नहीं हो पाना। किशोरावस्था में गर्भधारण क्षमता कहीं ज्यादा होती है और उस दौरान अनचाहा गर्भ ठहरने की संभावना भी बहुत होती है। कम पढ़ाई–लिखाई और निर्णय लेने में अक्षमता के कारण जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण कर पाना बेहद कठिन होता है। यही वजह है कि जिन राज्यों की आबादी अधिक है वहां बाल विवाह का अनुपात भी अत्यधिक है।

श्रोत : गर्ल्सनॉटब्राइड.आर्ग

1949 में ही बना कानून मगर पालन अब तक नहीं

आजादी के बाद हिन्दुस्तान में महिला अधिकारों की लड़ाई तेज होती गई। हालांकि इसके साथ ही महिलाओं के प्रति हिंसा और उनके शील को भंग करने की सामाजिक कुचेष्टा भी इससे कई गुना ज्यादा स्तर पर बढ़ रही थी। स्त्री को एक इंसान के रूप में देखने के लिहाज से सबसे अहम कड़ी थी 1949 का बाल विवाह प्रतिरोध अधिनियम। लड़की के जन्म लेते ही उसके हाथ पीले कर देने की चिंता से उपजी इस कुरीति ने न जाने कितनी लड़कियों के आगे बढ़ने के रास्ते बंद कर दिये थे। आजादी से पहले से भी कुछ स्तर पर बाल विवाह के खिलाफ हवा बनने लगी थी लेकिन तब तक वह सिर्फ घरों के अंदर तक सिमटी थी। 1920 में कुछ संघर्षो के बाद शारदा अधिनियम लाया गया जिसने लड़कियों की शादी की उम्र 14 और लड़कों के लिए 18 वर्ष सुनिश्चित की। महिला आंदोलनों के लिए यह अधिनियम मील का पत्थर बना। इसके बाद के सालों में महिला संगठनों ने लड़ाई के ज्यादा सशक्त माध्यमों को अपनाया और तब जाकर आजादी के दो साल बाद 1949 में बाल विवाह प्रतिरोध अधिनियम लाया जा सका जिसने लड़कियों को कम से कम 18 वर्ष तक की उम्र तक विवाह बंधन में बंधने से बचा लिया। हालांकि इतने सालों बाद आज भी इस कानून का व्यापक प्रभाव आम लोगों पर नहीं हो पाया है।

बिहार का हाल

बचपन को बचा रहा आईसीडीएस

2011 की जनगणना कहती है कि देश में 0–6 वर्ष के बच्चों की संख्या करीब 158 मिलियन है। जिस देश की इतनी बड़ी आबादी शैशवावस्था में हो उसका भविष्य निस्संदेह खूबसूरत होगा, बशर्ते कि उन्हें सही लालन–पालन मिले। इसी बात को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने 2 अक्टूबर, 1975 को एक विशाल परियोजना को आकार दिया जिसे एकीकृत बाल विकास परियोजना (आईसीडीएस) के नाम से जाना गया। आज यह विश्व की अकेली और अनोखी ऐसी योजना है जो शिशुओं के संपूर्ण मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास के लिए समर्पित है। इसके अलावा योजना के तहत गर्भवती महिलाओं, प्रसूता तथा किशोरवय लड़कियों के लिए भी कई प्रकार के कार्यक्रम चलाए गए हैं।

आर. पी. दफ्तुआर

(निदेशक, आईसीडीएस, बिहार)

बिहार में आईसीडीएस के निदेशक श्री आर.पी. दफ्तुआर बताते हैं कि राज्य के सभी 38 जिलों में 544 ब्लॉक ऑफिसों के माध्यम से इस योजना को चलाया जा रहा है। इस समय 91,677 आंगनबाड़ी केन्द्रों में 6 माह से लेकर 6 वर्ष तक के 74 लाख बच्चे और 17.5 लाख गर्भवती एवं प्रसूति महिलाएं योजना का लाभ प्राप्त कर रहे हैं। वे बताते हैं कि आईसीडीएस के जरिये आंगनबाड़ी केन्द्रों को और सशक्त बनाने तथा उनकी संख्या बढ़ाने के भी प्रयास किये जा रहे हैं। इसके लिए 2015–16 में राज्य में 23,041 नए आंगनबाड़ी केन्द्रों को खोलने का भी प्रस्ताव है। साथ ही ज्यादा समस्याग्रत 19 राज्यों के 281 ब्लॉक में आईएसएसएनआईपी चलाया जा रहा है जो मुख्य रूप से योजना को और मजबूती प्रदान करने तथा पोषण आधारित कार्यक्रमों को सशक्त बनाने के लिए तैयार किया गया है। इसका मकसद कमजोर बच्चों की अधिक संख्या वाले क्षेत्रों में बच्चों के विकास और शिक्षा के लिए अधिक काम करना है ताकि उसका अच्छा परिणाम सामने आ सके।

श्री दफ्तुआर ने बताया कि राज्य में मानव विकास मिशन के तहत 0 से 3 साल तक के बच्चों में कुपोषण की दर कम करने के लिए 'बाल कुपोषण मुक्त बिहार' अभियान भी हाल ही में शुरू की गई है। इस अभियान को कामयाब बनाने के लिए समाज कल्याण विभाग और आईसीडीएस जी–तोड़ कोशिश कर रहा है। इसके तहत जो बातें लोगों को समझाई जा रही हैं उनमें निम्न शामिल हैं :

- 6 महीने तक के बच्चों को केवल मां का दूध ही दिया जाना चाहिए। उन्हें पानी तक से दूर रखना चाहिए और इसका पूरे राज्य में सख्ती से पालन कराया जाना चाहिए।
- 6 महीने से कम उम्र के बच्चों को पानी पिलाने की सामाजिक सोच को बदलना चाहिए।
- 6 महीने से लेकर 36 महीने तक के बच्चों के विकास की पूरी निगरानी की जानी चाहिए। पानी को उबाल कर और छान कर ही पीना चाहिए।
- सभी आंगनबाड़ी केन्द्रों में ओआरएस का घोल और जरूरी दवाएं मौजूद रहनी चाहिए।
- 43676 आंगनबाड़ी केन्द्रों में वजन मापने की मशीन तथा 44715 केन्द्रों में वाटर फिल्टर खरीदा जा चुका है जबकि शेष को राशि आवंटित की जा चुकी है।

उपरोक्त अभियान के साथ ही आईसीडीएस को हाईटेक बनाने के भी पूरे प्रयास किये जा रहे हैं। इसके लिए ई–डाक प्रणाली अपनाई गई है तथा एमपीआर को ऑनलाइन बनाया गया है। आईसीडीएस के कर्तव्ययोगियों के लिए एक सॉफ्टवेयर बनाया गया है जिससे उन्हें प्रशिक्षित किया जा सके। साथ ही हर प्रकार की दुविधाओं तथा शिकायतों के निवारण के लिए एक रिड्रेसल सिस्टम भी बनाया गया है जिस तक हर किसी से पहुंच आसानी से हो सके।

11 से 18 वर्ष तक की किशोरियों के संपूर्ण विकास के लिए वर्ष 2011–12 में 'सबला' की शुरुआत की गई। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य किशोर वय लड़कियों को आत्मनिर्भर बनाना, उनकी क्षमता एवं दक्षता का संवर्द्धन करना तथा उनमें आत्मविश्वास जगाना है। इसके तहत अन्य योजनाओं का लाभ तो मिलता ही है साथ ही किशोरियों को 'टेक होम राशन' यानी घर ले जाने के लिए भोजन भी मिलता है। राज्य में यह योजना 12 जिलों में चल रही है जिनमें पटना, बक्सर, गया, औरंगाबाद, सीतामढ़ी, पश्चिम चंपारण, वैशाली, सहरसा, किशनगंज, कटिहार, बांका और मुंगेर शामिल हैं। 'सबला' के अंतर्गत जो कार्यक्रम चलाए जाते हैं उनमें 16 से 18 साल की लड़कियों के लिए कौशल प्रशिक्षण, पोषण एवं स्वास्थ्य से जुड़ी जानकारियां, परिवार नियोजन तथा बच्चों की देखभाल व सुरक्षा से जुड़े कार्यक्रम शामिल हैं।

बिहार का हाल

शिक्षा में पीछे, बाल श्रम में आगे बिहार

आकार में देश का 12वां और आबादी में तीसरा सबसे बड़ा राज्य बिहार समस्याओं में भी देश के कई राज्यों से कहीं आगे है। अशिक्षा और बेरोजगारी का दंश झेल रही बुद्ध, महावीर और गुरु गोविंद की यह धरती विकास के पायदान पर बढ़ तो रही है लेकिन रफ्तार धीमी है।

बाल मजदूर

वर्ष 2011 की जनगणना के मुताबिक, बिहार देश का दूसरा सबसे ज्यादा बाल श्रमिकों वाला राज्य है। देश के कुल बाल श्रमिकों के 11 फीसद बच्चे बिहार में हैं। इनमें से 5 से 14 वर्ष के बीच के 40 फीसद बच्चे अपना नाम तक लिखना नहीं जानते। एनजीओ क्राई के मुताबिक, राज्य के बाल श्रमिकों में से 61 फीसद बच्चे कृषि और पारिवारिक कामों में संलग्न हैं। पूर्णिया, कटिहार और मधेपुरा में 46 फीसद बाल श्रमिक निरक्षर हैं जबकि सीतामढ़ी और बांका में 44 फीसद बाल मजदूर पढ़–लिख नहीं सकते। सीवान, भोजपुर, बक्सर और रोहतास में इनकी संख्या 30 फीसद के करीब है।

बाल विवाह

पूरे देश में जहां बाल विवाह की दर 47 फीसद है वहीं बिहार में यह 60 फीसद तक मौजूद है। इस प्रकार बच्चों के विवाह के मामले में पहले नंबर पर आता है। इंटरनेशनल सेंटर फॉर रिसर्च ऑन वीमेन की रिपोर्ट के मुताबिक, आर्थिक पिछड़ापन और अशिक्षा राज्य में बाल विवाह के बड़े कारणों में हैं। इसके अलावा दहेज की मांग से बचने के लिए मां–बाप अपनी बेटियों की शादी कम उम्र में ही कर देते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि बड़ी बेटियों की शादी में उन्हें ज्यादा दहेज देना पड़ेगा। छोटी उम्र में बच्चियों की शादी करते समय मां–बाप अक्सर लड़के की उम्र की परवाह नहीं करते और कई बार उसे अधेड़ व्यक्ति के साथ भी बांध देते हैं।

शिक्षा

पूरे देश में शिक्षा का अधिकार कानून लागू हो जाने के बाद भी बिहार में सभी बच्चों के लिए शिक्षा दूर की कौड़ी बनी हुई है। राज्य बाल संरक्षण आयोग और यूनिसेफ द्वारा वर्ष 2013 में 38 जिलों के 375 स्कूलों में कराए गए एक अध्ययन में पाया गया कि शिक्षा का कानून लागू हो जाने भर से काम नहीं चलने वाला है क्योंकि राज्य के स्कूलों में आधारभूत संरचनाओं की भारी कमी है। किचेन शेड, शौचालय, लड़कियों के अलग शौचालय, लाइब्रेरी, खेल का मैदान, पाने का पानी और किताबों की कमी जैसे कारण बच्चों को स्कूल जाने से रोकते हैं। इस समय राज्य में हर कक्षा में औसतन 50 विद्यार्थी हैं जो कि राष्ट्रीय स्तर पर 30 है जबकि हर 50 बच्चों के लिए यहां एक शिक्षक मौजूद है और यह भी राष्ट्रीय औसत के हिसाब से बहुत ज्यादा है। इसी तरह 2006–07 के डिस्ट्रिक्ट इनफॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन (डीआईएसई) की रिपोर्ट पर गौर करें तो पाएंगे कि प्राइमरी स्तर पर स्कूल में दाखिला करवाने वाले बच्चों में बिहार का स्थान देश के अग्रणी 20 राज्यों में आता है जबकि अपर प्राइमरी लेवल पर यह देश के सबसे पीछे के 20 राज्यों में चला जाता है। यानी कक्षा बढ़ने के साथ ही बच्चों के स्कूल से ड्रॉप आउट की दर भी बढ़ती जाती है। हालांकि वर्ष 2006 के मुकाबले 2014–15 में राज्य में ड्रॉप आउट की दर में 2.1 फीसद की कमी आई है।

कुपोषण

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की वर्ष 2012–13 की रिपोर्ट में बताया गया है कि बिहार में 0 से 3 वर्ष तक के बच्चों में कुपोषण की दर वर्ष 2002 की तुलना में 3 फीसद बढ़ी है। साथ ही राज्य में पांच वर्ष से कम उम्र के 80 फीसद बच्चे कुपोषित हैं। ये आंकड़े चौंकाने वाले हैं। हालांकि एनएफएचएस की वर्ष 2015–16 की रिपोर्ट में बताया गया है कि राज्य में पांच साल से कम उम्र के कम वजनी बच्चों की संख्या 2005–06 के मुकाबले घटी है और यह 55.9 फीसद से कम होकर 43.9 फीसद पर आ गई है। बिहार में कुपोषित महिलाओं की संख्या में भी वृद्धि हुई है और 15 से 49 वर्ष तक की महिलाओं में यह संख्या 1998 के 60 फीसद से बढ़कर 2012 में 68 फीसद तक पहुंच गई है। लड़कियों का कम उम्र में विवाह और फिर गर्भवती हो जाना इसका प्रमुख कारण है। यही कारण है कि बच्चे पैदा करने की उम्र में महिलाओं के कुपोषित होने की दर भी बिहार में सर्वाधिक है। राज्य में आईसीडीएस बच्चों और किशोरियों के जीवन को संवारने में लगा है लेकिन फिर भी लक्ष्य बहुत दूर है।

जुवेनाइल जस्टिस

वर्ष 2011 तक राज्य की अदालतों में 16 हजार जुवेनाइल मामले लंबित थे जिनमें से सबसे ज्यादा 1500 मामले केवल पटना के थे। यह स्थिति तब है जब जुवेनाइल जस्टिस एक्ट, 2000 में यह साफ कहा गया है कि ऐसे मामले 4 महीने के भीतर निबटा लिए जाने चाहिए। राज्य में 16 सुपरविजन होम, स्पेशल होम, रिमांड होम और सुरक्षा होम हैं जहां एक हजार से ज्यादा बच्चे मौजूद हैं। मामलों की संख्या को देखते हुए यह काफी नहीं है।

बाल श्रम

मजदूर है हर 11वां बच्चा

प्रकृति की सबसे कोमल और विशुद्ध कृति हैं बच्चे। हर लोभ, प्रपंच और षडयंत्र से परे बच्चों की सुरक्षा करना और उनका संपूर्ण पोषण करना हम सबका दायित्व है। लेकिन दुर्भाग्यवश हमारा देश दुनिया में सर्वाधिक बाल श्रमिकों वाला देश है। बाल श्रमिक यानी 14 वर्ष से कम उम्र के वे बच्चे जो अपना या अपने परिजनों का पेट पालने के लिए मजदूरी करते हैं और जिससे उनके बचपन को नुकसान पहुंचता है। 2011 की जनगणना कहती है कि देश में 4.3 मिलियन बाल मजदूर हैं लेकिन इस क्षेत्र में काम कर रहे एनजीओ बचपन बचाओ आंदोलन का दावा है कि अभी भी हमारे यहां 11.7 मिलियन बच्चे या तो मजदूरी कर रहे हैं या काम की तलाश में हैं। इसी तरह आंध्र प्रदेश की एम. वी. फाउंडेशन ने अपने अध्ययन में पाया कि देश में करीब चार लाख बच्चे कॉटनसीड के उत्पादन के काम में लगे हैं जिनमें से ज्यादातर 7 से 14 वर्ष तक की लड़कियां हैं और जो 14 से 16 घंटे तक लगातार काम करते हैं। फाउंडेशन का दावा है कि इनमें से 90 फीसद बच्चे आंध्र प्रदेश में काम करते हैं। कई स्वयंसेवी संस्थाओं ने अपने अध्ययनों में पाया कि 40 फीसद बच्चे पत्थर तोड़ने के खतरनाक काम में लगे हैं। प्रतिबंध के बावजूद कर्नाटक के बेलारी में खदानों में भी बच्चों के काम करने के प्रमाण पाए गए हैं। शहरों में ज्यादातर बच्चे जरी और कढ़ाई के काम में लगे होते हैं।

बच्चों का मजदूरी करना अकेले भारत की समस्या नहीं है बल्कि पूरी दुनिया में यह एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। एक अनुमान के मुताबिक विश्व में 150 मिलियन बच्चे मजदूरी करने के लिए मजबूर हैं। इनमें भी सब–सहारा अफ्रीका के देशों में हालात अधिक खराब हैं और वहां के देशों में 5 से 14 वर्ष के हर चार में से एक बच्चा मजदूरी कर रहा है। हालांकि ज्यादातर देशों में बाल श्रम करने वाले लड़के और लड़कियों की संख्या एक समान ही है लेकिन केवल लैटिन अमेरिका में लड़कों की संख्या लड़कियों से थोड़ी अधिक है।

देश में बच्चों के लिए काम करने वाली चाइल्डलाइन इंडिया बाल मजदूरी के पीछे सबसे बड़ा कारण गरीबी और सामाजिक सुरक्षा की कमी को मानती है। अमीरों और गरीबों के बीच की बढ़ती खाई, मौलिक सेवाओं का निजीकरण और नव उदारवादी आर्थिक नीतियों ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया है जिसका प्रभाव बच्चों पर पड़ा है। देश में 14 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा के अधिकार के तहत लाया गया है लेकिन उसकी पहुंच हर बच्चे तक सुनिश्चित नहीं की जा सकी है। नतीजतन अभी भी 6 से 14 वर्ष के 33.9 मिलियन बच्चे स्कूलों से बाहर हैं और ऐसा 2011 की जनगणना रिपोर्ट में बताया गया है। ऐसे बच्चे मजदूरी करने के लिए आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। बच्चों के लिए काम करने वाली संस्था 'हक' के मुताबिक, बाल श्रम की समस्या आदिवासियों, मुसलमानों, अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्गों में अधिक व्याप्त है। 'हक' मानती है कि देश में कानून–व्यवस्था की लचर स्थिति तथा योजनाओं एवं नीतियों की बच्चों तक आसान पहुंच न होने के कारण नियोक्ता मौके का फायदा उठाते हैं जिसके कारण बाल मजदूरी चरम पर है।

देश में बाल श्रम की गंभीरता को निम्न आंकड़ों से समझ सकते हैं :

- देश में हर 11 बच्चे में से एक मजदूरी करता है।
- 80 फीसद बाल श्रमिक गांवों में मौजूद हैं जिनमें हर चार में से तीन बच्चा कृषि कार्य अथवा घरेलू उद्योगों में संलग्न है।
- देश भर के बाल श्रमिकों में से आधे मुख्यतः पांच राज्यों में काम कर रहे हैं जिनमें बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र शामिल हैं।
- जोखिम भरे कामों में किशोरों की संख्या करीब 20.7 फीसद है जबकि ऐसे कामों में वयस्कों की संख्या 25 फीसद है।
- बाल श्रमिकों का 62.8 फीसद 15 से 17 साल के बीच के वैसे बच्चे हैं जो जोखिम भरे कामों में लगे हैं।
- खतरनाक कामों में लगे 10 फीसद किशोरवय बच्चे पारिवारिक कारखानों में काम करते हैं।
- खतरनाक कामों में लगे 70 फीसद किशोर पढ़ाई नहीं करते।

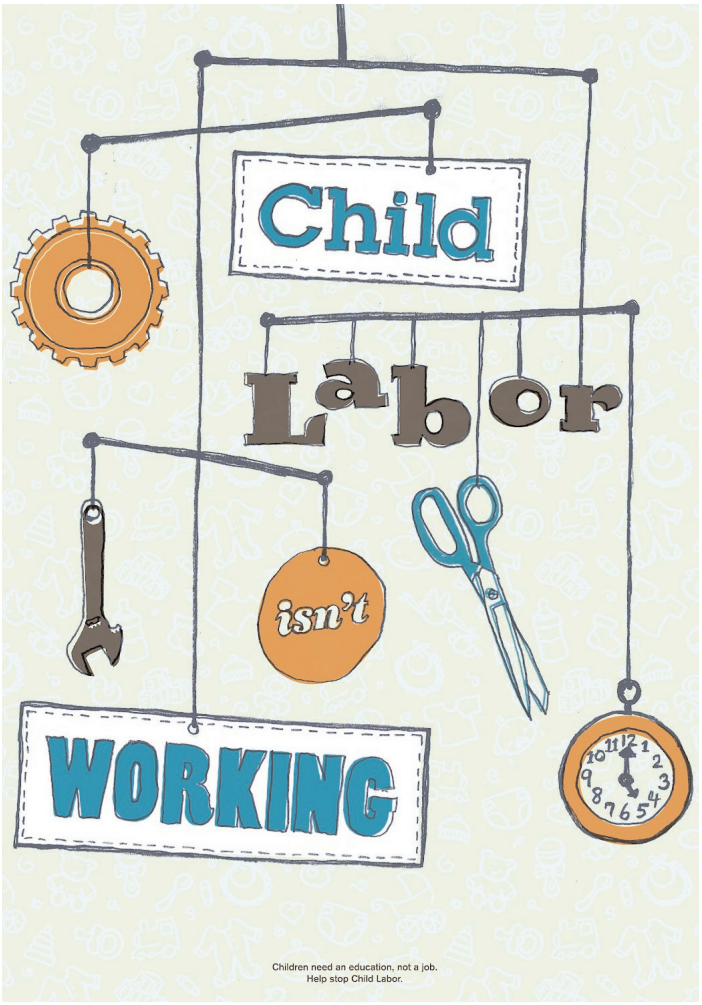

श्रोत : बीपी.ब्लॉगस्पॉट.कॉम

बदलाव के सारथी

काई

1979 में रिपन कपूर ने अपने 6 दोस्तों के साथ मिलकर 'चाइल्ड राइट्स एंड यू' यानी काई की कल्पना की थी। डायनिंग टेबुल के चारों ओर बैठे इन दोस्तों ने तब 50 रुपये से की थी इस महाअभियान की शुरुआत। असल में एक एयरलाइन में काम करने वाले रिपन जब भी गरीब और सुविधाविहीन बच्चों को मजदूर और नौकरों की तरह काम करते देखते तो उनका मन विचलित हो जाया करता था। ऐसे ही एक दिन उन्होंने अपने स्कूल के समाज सेवा क्लब को ज्वायन कर लिया और उसके साथ अस्पतालों में जाकर सेवा करने और गलियों में बच्चों को पढ़ाने जैसे कामों में शामिल होने लगे। उन्होंने पाया कि उनके जैसे ही कई लोग हैं जो समाज के लिए कुछ करना चाहते हैं लेकिन उन्हें सही प्लेटफार्म और संसाधन नहीं मिल पाता है। इसलिए दोस्तों के साथ जब उन्होंने काई का गठन किया तो सीधे–सीधे लोगों के बीच जाकर काम करने के बजाय खुद को एक माध्यम की तरह सामने रखा जो काम करने की इच्छा रखने वाले समर्पित लोगों और संस्थाओं तथा संसाधन उपलब्ध कराने वालों के बीच पुल की तरह काम करता था। काई ने अपनी इस रणनीति को हर जगह कायम रखा चाहे वो पैसा जुटाने का काम हो या पार्टनर एनजीओ के साथ संबंध बनाने का। शुरुआती निराशा के बाद भी रिपन को अपनी कोशिश पर पूरा भरोसा था क्योंकि वे जानते थे कि हममें से हर कोई परिवर्तन का सारथी बन सकता है। आज देश भर में काई के 3500 से ज्यादा कार्यकर्ता हैं जो स्वेच्छा से करीब दस हजार बच्चों के जीवन में बदलाव लाने की काशिश कर रहे हैं।

प्रथम

1995 में मुंबई की स्लम बस्ती में रहने वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए माधव चवान और फरीदा लांबे ने अनौपचारिक स्कूलों की शुरुआत की थी। ये स्कूल कहीं भी लग जाते थे, मंदिर में, दफ्तरों में या किसी के घर में भी। मकसद केवल एक ही था स्कूल जाने से वंचित बच्चों को पढ़ाना। लोगों ने भी माधव और फरीदा की कोशिश में उनका साथ दिया और देखते ही देखते यह छोटी सी कोशिश एक बड़े अभियान में बदल गई। 20 साल बाद आज यह संस्था शिक्षा के लिए काम करने वाली देश की बड़ी संस्थाओं में शामिल हो चुकी है। देश के 23 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में शिक्षा का अलख जगा रही प्रथम का विस्तार अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी और यूएई तक हो चुका है। प्रथम का 'एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट यानी असर' कई राज्यों और केंद्र सरकार के लिए मददगार बन रही है और इसे शिक्षा की वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। प्रथम पढ़ाने के नए तरीकों पर जोर देता है। परंपरागत शैली को छोड़कर यह ऐसी तकनीकों का विकास करता है जो वर्तमान में स्कूलों में अपनाई जा रहे तरीकों को चुनौती देती हैं। प्रथम का दावा है कि उसके कार्यक्रम रचनात्मक और परिणाम आधारित हैं। 2005 में प्रथम ने एक राष्ट्रव्यापी सर्वे किया था और उसके परिणामों का इस्तेमाल देश की शिक्षा नीति और योजनाओं को लागू करने में भी किया गया। प्रथम वर्ष 2011 में स्कॉल अवार्ड फॉर सोशल इंटरप्रेन्योरशिप के लिए नामांकित हुआ जबकि 2013 में उसे बीबीवीए फाउंडेशन अवार्ड दिया गया।

बचपन बचाओ आंदोलन

बच्चों को मजदूरी करते देख व्यथित कैलाश सत्यार्थी ने 1980 में बचपन बचाओ आंदोलन की शुरुआत की थी। जिस दौर में कैलाश बच्चों की आवाज बने, उस समय बाल मजूदरी न तो राष्ट्रीय चर्चा का विषय थी और न ही इस पर मीडिया में कोई बहस होती थी। नतीजतन इसको लेकर कोई सशक्त कानून भी अमल में नहीं लाया जा सका था। साथ ही इसका विरोध करना भी बेहद खतरनाक माना जाता था। सबके बावजूद बचपन बचाओ आंदोलन ने जो लड़ाई छेड़ी उसने न केवल देश बल्कि पूरी दुनिया में भी बच्चों की आजादी का शंखनाद कर दिया। तब से लेकर आज तक बचपन बचाओ आंदोलन ने 82 हजार से अधिक बच्चों को शोषण से मुक्त कराया है। इसके प्रयासों का ही नतीजा है कि देश में बाल श्रम निषेध और बाल तस्करी निषेध अधिनियम सही आकार ले सके। बीबीए ने मुख्य रूप से ईंट भट्ठों पर काम करने वाले, पत्थर कूटने वाले, कालीन बनाने जैसे जोखिम भरे कामों में लगे बच्चों को मुक्त कराने में महती भूमिका निभाई है। 1990 में मुक्ति आश्रम बनाकर बीबीए ने एक और बड़ी उपलब्धि हासिल की। इस आश्रम में मुक्त कराकर लाए गए बाल मजदूरों का पालन किया जाता है। बीबीए ने ऐसी कई अनगिनत राहें बनाई हैं जिन पर चलकर बच्चों को आजादी की मंजिल मिलती है और इसी का फल है कि 2015 में कैलाश सत्यार्थी को विश्व के सबसे प्रतिष्ठित नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सेव द चिल्ड्रेन

करीब सौ साल पहले जब प्रथम विश्व युद्ध समाप्ति की कगार पर था तब युद्ध से अपना परिवार और बचपन खो चुके बच्चों की जिंदगी बचाने के लिए ग्लेनटाइन जेब नाम की महिला ने सेव द चिल्ड्रेन फंड का निर्माण किया और पिछड़े और वंचित बच्चों की मदद के लिए पैसे जुटाने शुरू किये। उनकी यह मुहिम इतनी सफल हुई कि देश की सीमाओं को भी पार कर गई। ग्लेनटाइन ने लोगों के जेहन में यह बात उतारी कि बच्चों को भी स्वस्थ, सुखी और संपूर्ण जीवन जीने का उतना ही हक है जितना वयस्कों को। अपनी इसी सोच को आधार बनाकर उन्होंने 1912 में पहले 'डिक्लेरेशन ऑफ द राइट्स ऑफ द चाइल्ड' का प्रारूप तैयार किया जो आज संयुक्त राष्ट्र की बाल अधिकारों को लेकर बने कन्वेंशन की आत्मा है। 1931 में भारत में महात्मा गांधी ने भी ग्लेनटाइन के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर कर उसे समर्थन दिया। 50 के दशक के बाद सेव द चिल्ड्रेन ने एशिया में सक्रियता से काम करना शुरू किया और अंततः 2008 में भारत में भी इसकी शाखा खोली गई। पिछले 8 वर्षों में इसने 18 राज्यों में 6.1 मिलियन बच्चों की जिंदगी बदलने में अपनी भागीदारी निभाई है। केवल 2015 में ही सेव द चिल्ड्रेन ने दुनिया भर में आई प्राकृतिक और मानवजनित विपदाओं के दौरान 13.47 लाख बच्चों की मदद की। देश में यह संस्था बाल रक्षा भारत के नाम से निबंधित है। घड़ी विपदा की हो या सेहतमंद शुरुआत की, सेव द चिल्ड्रेन हर जगह मौजूद रहा है।

यहां कमांडो ट्रेनिंग से कम नहीं
Rain or sunshine, th
47m, India has the most adolescent school dropouts
SITTING OUT
INDIA DATA
NEWBORNS HAVE UNEQUAL CHANCES OF SURVIVAL IN INDIA
BEST 5 STATES
Five-yr-old girl kidn from school bus in
₹3L looted from petrol pump
Adoption by Indian parents
Adoption by foreign parents
RURAL FEMALE
URBAN MALE
THE SITUATION IN URBAN INDIA IS WORSE THAN IN RURAL INDIA. THERE HAS BEEN AN OVERALL INCREASE
हर बारिश में एक सा फोटो! देखिए हमारे
रोज किन खतरनाक रास्तों से स्कूल जा रहे
Want to be IPS officer, says teen rape survivor
ADOPTIONS DOWN BY 2
Despite the introduction process through Child Information and Guidan implemented in August adoptions within the co about 25% in
Chennai hotels using minors as ba
16-Year-Old's Rape Hints At Possibility
FACTS OF CHILD LABOUR
According to a campaign against child labour study, India has over 82 lakh child labourers
11% of country's child labourers are in Bihar
40% of the child workers in Bihar cannot write their names: CRY
Bihar ranks second state in having maximum child workers.
नदी पार कर ऐसे जाते हैं स्कूल

मंजरी

स्त्री के मन की

Sulabh International Social Service Organisation

आप हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है।

मुख्य संपादक
नीना श्रीवास्तव

© इक्विटी फाउंडेशन